MBKM FOUNDATION
A Not-for-Profit Organization for Voluntary Social Werk

मीडिया मैप

उदार जनतंत्र का सजग प्रहरी

वर्ष 11
अंक 10
November 2026
मूल्य ₹50/-

नेहरू की विरासत की प्रासंगिकता

नेहरू फोबिया का मूल कारण



श्रीमती इंदिरा गांधी और आपातकाल: अनकही कहानी



पंजाब के 'हैनिंमैन' डॉ. मोहन सिंह: एक प्रेरक गाथा

विकास की विडंबना: क्या भारत अपने बच्चों को पीछे छोड़ रहा है?



सोनिया गांधी की आत्मकथा: प्रेम, अपनापन और...

प्राकृतिक चिकित्सा पर स्मृति व्याख्यान

: हम क्यों :

मीडिया मैप एक वैचारिक पत्रिका है। हमारे समाज के नीतिपरक और मूल्यनिष्ठ बिन्दु तथा इनसे जुड़ाव रखने वाले आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक मुद्दे इसकी विषयवस्तु है। मीडिया मैप की संपादकीय नीति उदारवादी, आधुनिक, प्रगतिशील व सर्व धर्म समभाव की भावना पर आधारित है।

मीडिया मैप हमारे बहुलतावादी समाज की विविधताओं से सुजित समस्त सोच, विचार, दृष्टिकोण, मूल्य और मान्यताओं को अपने में समाहित करने का एक प्रयास है। हमारा उद्देश्य वैज्ञानिक सोच द्वारा समाज से जुड़े मूल मुद्दों पर एक प्रबुद्ध जनमत विकसित करना है, जिससे देश में संकुचित मानसिकता और आपसी टकराव से ऊपर उठकर एक उत्तरदायी विचार-विमर्श का वातावरण तैयार हो सके।



समावेशी समाज | विचारों का विस्तार | मूल्य-आधारित संवाद | जागरूक नागरिकता | बेहतर भारत के लिए

सब्सक्राइब करें हमारा डिजिटल प्लेटफॉर्म

@mediamapnetwork

मीडिया मैप

उदार जनतंत्र का सजग प्रहरी

संपादकीय सलाहकार मंडल

प्रो. बलदेवराज गुप्त

के. बी. माथुर

डॉ. सलीम खान

डॉ. जॉन दयाल

प्रो. अविनाश सिंह

प्रधान संपादक

प्रदीप माथुर

संयुक्त संपादक - डॉ सतीश मिश्र

सहायक सम्पादक - जगदीश गौतम

तकनीकी संपादक - राजीव माथुर

प्रबंध संपादक -चन्द्र कुमार

विधि परामर्शदाता-संजय माथुर

पंजीकृत एवं संपादकीय कार्यालय 69 - ज्ञानखंड-4, इन्दिरापुरम, गाजियाबाद 201014 उत्तर प्रदेश

दूरभाष - 0120 - 3248535

जन संपर्क अधिकारी मो. 9910322682

स्वामी, मुद्रक, प्रकाशक, एवं संपादक प्रदीप माथुर द्वारा- वर्ल्ड विंडो डिजिटल प्रेस, नवयुग मार्केट, गाजियाबाद, उत्तर प्रदेश 201001 से मुद्रित एवं मीडिया मैप प्रकाशन - 69 - ज्ञानखंड-4, इन्दिरापुरम, गाजियाबाद 201014 उत्तर प्रदेश से प्रकाशित।

इस पत्रिका से जुड़े सभी पदाधिकारी, लेखकगण व अन्य सहयोगीगण समाज हित में बगैर किसी पारिश्रमिक या वेतन के स्वैच्छिक सेवा प्रदाता हैं।

इस अंक में प्रकाशित समस्त फीचर व समाचार के लेखकों के अपने स्वतंत्र विचार हैं, जिससे स्वामी, मुद्रक, प्रकाशक एवं संपादक का कोई उत्तरदायित्व नहीं है। किसी भी प्रकार के विवाद की स्थिति में क्षेत्राधिकार जिला एवं सत्र न्यायालय गाजियाबाद, उत्तर प्रदेश होगा।

अनुक्रमणिका

- संपादकीय - उदार लोकतंत्र की वापसी के संकेत (2)
- समाचार सरिता (4)
- विकास के दावे, लोकतंत्र के सवाल और बेचैन जनता (7)
- नेहरू की महान विरासत की प्रासंगिकता (12)
- नेहरू फोबिया का मूल कारण क्या है? (15)
- विकास की विडंबना: क्या भारत अपने बच्चों को पीछे... (17)
- बाल जगत - बचपन कहीं स्क्रीन में तो कैद नहीं हो रहा? (19)
- श्रीमती इंदिरा गांधी और आपातकाल: अनकही कहानी (21)
- सोनिया गांधी की आत्मकथा: प्रेम, अपनापन और... (24)
- प्राकृतिक चिकित्सा और आध्यात्मिकता का दिव्य संगम (27)
- पंजाब के 'हैनिमैन' डॉ. मोहन सिंह: एक प्रेरक गाथा (29)
- मीडिया जगत - यह रैंकिंग चुभनी चाहिए (31)
- लापता छोटी नीली पुस्तिका का मामला (34)
- हास्य-व्यंग्य - देश बदल रहा है, हम भी बदल रहे हैं! (36)

RNI No: UPHIN/2016/68336 Website: www.mediamap.co.in Email: editor@mediamap.co.in

संपादकीय

उदार लोकतंत्र की वापसी के संकेत



प्रो प्रदीप माथुर

नवंबर का महीना भारत के अग्रणी स्वतंत्रता सेनानी, इतिहास के एक विराट व्यक्तित्व और स्वतंत्र भारत के प्रथम प्रधानमंत्री पंडित जवाहरलाल नेहरू की जयंती का महीना है। यह महज संयोग है या आने वाले समय का संकेत कि इस वर्ष हम नेहरू की जयंती ऐसे राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय घटनाक्रमों की पृष्ठभूमि में मना रहे हैं, जो बड़ी कंपनियों और बहुराष्ट्रीय निगमों (एमएनसी) के समर्थन से चलने वाली दमनकारी, अधिनायकवादी और नियंत्रित शासन व्यवस्था के युग के अंत की संभावनाओं की ओर इशारा करते हैं।

यह सब ऐसे समय हो रहा है, जब भारत ही नहीं, यूरोप, एशिया और लैटिन अमेरिका के अनेक देशों में उदारवादी विचारधारा के समर्थकों ने सामाजिक न्याय पर आधारित निष्पक्ष और समतामूलक विश्व की उम्मीद लगभग छोड़ दी थी। उन्होंने पूंजीवादी वर्चस्व और शोषण के बीच जीने को अपनी नियति मान लिया था। ऐसे निराशाजनक माहौल में भारत और दुनिया में उदार लोकतंत्र की वापसी की संभावना एक स्वागतयोग्य संकेत है।

इसका अर्थ यह कतई नहीं है कि दुनिया, विशेषकर भारत, को अपने शिकंजे में जकड़े हुए अधिनायकवादी शासन और माफिया जैसी कार्यशैली वाले सत्ता प्रतिष्ठानों का वर्चस्व समाप्त हो गया है। लेकिन हाल के घटनाक्रम निश्चित रूप से इस दिशा में बदलाव की संभावनाएँ जगाते हैं।

इसकी शुरुआत न्यूयॉर्क के मेयर पद पर जोहरान ममदानी की अप्रत्याशित जीत से हुई। न्यूयॉर्क दुनिया की बड़ी बहुराष्ट्रीय कंपनियों और कॉरपोरेट कारोबार के प्रभाव का एक प्रमुख केंद्र माना जाता है। ममदानी की जीत के बाद मार्क कार्नी और उनकी उदारवादी पार्टी का सत्ता में आना एक और महत्वपूर्ण घटनाक्रम था। कार्नी ने डोनाल्ड ट्रंप के दबाव और दादागिरी का सफलतापूर्वक मुकाबला किया तथा अमेरिकी महाशक्ति के प्रभाव क्षेत्र में रहते हुए भी कनाडा की स्वतंत्र आर्थिक और राजनीतिक पहचान को मजबूती दी। उन्होंने अमेरिकी एकाधिकार पर निर्भर रहने के बजाय दुनिया के अनेक देशों के साथ व्यापारिक संबंध विकसित किए।

जहाँ मार्क कार्नी ने दुनिया को दिखाया कि अमेरिकी आर्थिक वर्चस्व को चुनौती दी जा सकती है, वहीं ईरान ने यह संदेश दिया कि अमेरिका अपनी सैन्य ताकत के बल पर पूरी दुनिया को अपनी मर्जी से चलाने में सफल नहीं हो सकता। अपार संसाधनों और अत्याधुनिक तकनीक से लैस दुनिया की सबसे शक्तिशाली ताकत के आक्रामक दबाव का साहस और दृढ़ संकल्प के साथ प्रतिरोध किया जा सकता है। इस वर्ष पश्चिम एशिया में हुए युद्ध ने भी यह स्पष्ट किया कि कोई देश या गठबंधन कितना ही शक्तिशाली क्यों न हो, उसे दुनिया के प्राकृतिक संसाधनों पर अपने पक्षपातपूर्ण हितों के लिए एकाधिकार जमाने की छूट नहीं दी जा सकती।

इसके अलावा, ब्राजील में लूला की सत्ता में वापसी, ट्रंप के विरोध के बावजूद उनकी राजनीतिक सफलता, पोलैंड और साइबेरिया में लंबे समय से जमे सत्ता प्रतिष्ठानों को चुनौती, यूरोप के अनेक देशों में दक्षिणपंथी और अतिदक्षिणपंथी सरकारों के खिलाफ व्यापक जनप्रदर्शन, बांग्लादेश और नेपाल में सफल

जनांदोलनों के परिणामस्वरूप सत्ता परिवर्तन तथा अमेरिका में डोनाल्ड ट्रंप की रिपब्लिकन पार्टी और भारत में नरेंद्र मोदी की भाजपा को हाल के चुनावों में मिली करारी पराजय जैसे घटनाक्रम इस बात के स्पष्ट संकेत हैं कि दुनिया इस समय एक बड़े राजनीतिक बदलाव के दौर से गुजर रही है।

भारत की बात करें तो कुछ राज्यों में विधान परिषदों के हालिया चुनावों में भाजपा को मिली पराजय भी उस निष्पक्ष और उदार समाज की आकांक्षा का एक छोटा-सा संकेत है, जिसकी पहचान मोदी शासन के आगमन से पहले तक भारत की रही है। सरकार की मशीनरी, समझौतापरस्त नौकरशाही, बड़े पूंजीपतियों और अनुकूल परिस्थितियों में काम करने वाले मीडिया के सहयोग से देश में एक अनुशासित और नियंत्रित सामाजिक-राजनीतिक वातावरण थोपने की कोशिश की गई है। गलत इतिहास पढ़ाकर और धर्म के नशे में डुबोकर तैयार किए गए अंधसमर्थकों की भीड़ ने भी इतने वर्षों तक इस शासन को टिकाए रखने में भूमिका निभाई है।

लेकिन पिछले मई में तत्काल अस्तित्व में आए कॉकरोच जनता पार्टी के नेतृत्व में देश के युवाओं ने जिस आंदोलन का आगाज किया, उसने दिखा दिया कि मोदी शासन की अजेय दिखाई देने वाली पकड़ को भी सफलतापूर्वक चुनौती दी जा सकती है। अब बढ़ती महंगाई, बेरोजगारी की ऊंची दर और स्वास्थ्य तथा शिक्षा जैसी बुनियादी जनकल्याणकारी सुविधाओं की लगातार बढ़ती लागत के खिलाफ जन-असंतोष को व्यापक रूप से संगठित किए जाने से यह संकेत मिलने लगा है कि इस अधिनायकवादी शासन को अपरिहार्य मानने का दौर समाप्ति की ओर है।

अपने कुलीन और अभिजात पृष्ठभूमि तथा निर्विवाद सत्ता-शक्ति के बावजूद पंडित जवाहरलाल नेहरू एक सच्चे लोकतंत्रवादी और उदार विचारों वाले राजनेता थे। उन्होंने सामंती असमानताओं, वर्गीय विभाजन और जातिगत ऊंच-नीच से जकड़े समाज में एक गैर-सांप्रदायिक, समतामूलक और न्यायपूर्ण व्यवस्था बनाने का सपना देखा और उसके लिए लगातार काम किया।

एक आधुनिक दृष्टिकोण, वैज्ञानिक चेतना और लोकतांत्रिक मूल्यों से परिपूर्ण, वास्तविक अर्थों में स्वतंत्र और उदार समाज का निर्माण ही उस कृतज्ञ राष्ट्र की ओर से नेहरू को उनके जन्मदिन पर दिया जाने वाला सबसे बड़ा उपहार हो सकता है।

जीवन सार

दीर्घ और स्वस्थ जीवन का राज

लंबी और स्वस्थ जिंदगी का राज केवल अच्छा भोजन, नियमित व्यायाम या अच्छी आनुवंशिकता नहीं है। रसायन शास्त्र और सामाजिक लाइसेंस पर दिए गए कई इंजीनियरों से संकेत मिलता है कि तनाव कम रखना और आजीवन जीवन जीना बेहद महत्वपूर्ण है।

मन के विरुद्ध लगातार जीना, ख़ामोश काम में ख़ारिज होना, नकारात्मक लोगों से क़ायम रहना और हर समय भविष्य की चिंता करना शरीर और मन दोनों पर असर डाल सकता है। इसलिए अपनी पसंद-नापसंद को स्वीकार करें और जीवन को केवल 'बद में' के लिए न टालें।

अकेलेपन से बचत। परिवार, दोस्तों और समाज से अच्छे संबंध, मानसिक और शारीरिक स्वास्थ्य के लिए महत्वपूर्ण हैं। जीवन में कोई उद्देश्य या 'जीने की वजह' होना भी व्यक्ति को सक्रिय और सक्रिय बनाए रखना है। जापानी परंपरा में इसे 'इकिगाई' कहा जाता है।

स्वास्थ्य के प्रति सावधानी जरूरी है, लेकिन हर समय चिंता, अंतर्वस्तु और फिटनेस को लेकर चिंता भी नहीं। रोज़मर्रा की प्राकृतिक प्रतिक्रियाएँ–चलना, सीढ़ियाँ चढ़ाना, बागवानी और घरेलू काम–शरीर को सक्रिय रखने में मदद करती हैं।

उदार और समग्र भारत फिर चर्चा के केंद्र में

कांग्रेस के नेतृत्व में आयोजित 1 नवंबर की विपक्षी रैली का मोदी सरकार पर राजनीतिक प्रभाव भले ही आने वाले समय में स्पष्ट हो, लेकिन इसका तत्काल असर उदारवादी और लोकतांत्रिक विचारों से जुड़े लोगों के मनोबल पर दिखाई देने लगा है। लंबे समय से निरंकुश शासन और भाजपा की सत्ता से अजेय बने रहने की आशंका पाल रहे लोगों में अब बदलाव की उम्मीद जगी है।

आरएसएस-भाजपा की विचारधारा और शासन शैली को लेकर आशंकाएं पहले से थीं, लेकिन अटल बिहारी वाजपेयी के अपेक्षाकृत उदार और समावेशी व्यक्तित्व ने अनेक लोगों को यह विश्वास दिलाया कि भाजपा का शासन उतना कठोर नहीं होगा। मोदी के नेतृत्व में यह धारणा बदल गई। उनकी शासन शैली असहमति को दबाने, सत्ता के केंद्रीकरण और कॉरपोरेट हितों को बढ़ावा देने के आरोपों से घिरी रही। स्वतंत्रता संग्राम से विकसित भारत की लोकतांत्रिक परंपरा–सत्ता से सवाल पूछना, अहिंसक प्रतिरोध और नागरिक स्वतंत्रता–इस प्रवृत्ति के विपरीत रही है।

आरएसएस की विचारधारा ने यूरोपीय फासीवादी आंदोलनों से प्रेरणा ली और बहुसंख्यकवादी राजनीति को बढ़ावा दिया। भाजपा शासन में राजनीतिक सत्ता, धनबल, सरकारी मशीनरी और अनुकूल मीडिया के इस्तेमाल से विरोधी आवाजों को कमजोर किया गया तथा मोदी की व्यक्तित्व-केंद्रित छवि बनाई गई। इसके बावजूद आर्थिक वास्तविकताओं और चुनावी कमजोरियों ने भाजपा की अजेयता के दावे पर सवाल खड़े किए।

विपक्षी नेताओं, सामाजिक कार्यकर्ताओं, पत्रकारों और बुद्धिजीवियों के प्रतिरोध को लंबे समय तक निष्फल माना जाता रहा। अनेक लोगों ने निरंकुश शासन को अपरिहार्य मानकर राजनीतिक बदलाव की उम्मीद छोड़ दी थी। लेकिन भारत की विविधता, लोकतांत्रिक परंपराएं और सत्ता के विरोध का ऐतिहासिक स्वभाव किसी एक विचारधारा के स्थायी वर्चस्व को संभव नहीं बनाते।

1 नवंबर की रैली भले ही तत्काल किसी निर्णायक राजनीतिक बदलाव का संकेत न हो, लेकिन उसने लोकतंत्र, धर्मनिरपेक्षता, बहुलतावाद और संवैधानिक मूल्यों में विश्वास रखने वालों का आत्मविश्वास लौटाया है। इसका संदेश स्पष्ट है–प्रतिरोध संभव है, सत्ता परिवर्तन की संभावना जीवित है और समावेशी, उदार तथा धर्मनिरपेक्ष भारत का विचार फिर राष्ट्रीय राजनीति के केंद्र में आ रहा है।

प्रो. प्रदीप माथुर

भाजपा का नया राष्ट्रवाद राष्ट्रवाद और सत्ता परिवर्तन

पेपर लीक के खिलाफ मई में शुरू हुआ छात्रों का विरोध और 'कॉकरोच जनता पार्टी' (CJP) का उभार कथित वोट चोरी के खिलाफ देशव्यापी आंदोलन में बदल गया है। मुख्य चुनाव आयुक्त ज्ञानेश कुमार के

इस्तीफे की मांग से शुरू हुआ यह आंदोलन मोदी सरकार के लिए चुनौती बनता दिखाई दे रहा है। इससे राजनीतिक नैरेटिव की लड़ाई में भी बदलाव आया है।

2012 से भाजपा-आरएसएस का वैचारिक तंत्र जनमत पर प्रभावी रहा। उसने मनमोहन सिंह सरकार को नीतिगत लकवे और भ्रष्टाचार से ग्रस्त तथा राहुल गांधी को 'पप्पू' के रूप में प्रस्तुत किया। सोशल मीडिया, अन्ना आंदोलन, सरकार विरोधी मीडिया विमर्श और मोदी की प्रभावशाली भाषण-कला ने इस नैरेटिव को मजबूती दी। कांग्रेस-मुक्त भारत के अभियान में विपक्षी दलों, वाम-उदारवादी समूहों और नागरिक संगठनों को भी निशाना बनाया गया।

नोटबंदी, जीएसटी और बढ़ते जन असंतोष के बावजूद भाजपा का राजनीतिक वर्चस्व 2024 के लोकसभा चुनाव में कमजोर पड़ा। 400 पार का दावा करने वाली पार्टी अपने दम पर बहुमत भी नहीं जुटा सकी। पेपर लीक और युवाओं के विरोध ने इस असंतोष को और उभारा। सरकार की दमनकारी प्रतिक्रिया भी उलटी पड़ती दिखाई दी। अब भाजपा आईटी सेल और समर्थक मीडिया की विश्वसनीयता पर सवाल उठ रहे हैं तथा राहुल गांधी और विपक्ष के हमले पहले से अधिक प्रभावी हो रहे हैं।

भाजपा-आरएसएस अब राष्ट्रवाद और सत्ता परिवर्तन के भय को नए राजनीतिक हथियारों के रूप में इस्तेमाल कर रहे हैं। लेकिन नई पीढ़ी राष्ट्रवाद को धर्म या राजनीतिक निष्ठा से नहीं, बल्कि संविधान, नागरिक समानता, लोकतांत्रिक संस्थाओं और देश की संप्रभुता से जोड़कर देखती है। उसके लिए सरकार बदलना लोकतंत्र की स्वाभाविक प्रक्रिया है, कोई राष्ट्रीय संकट नहीं।

युवा आंदोलन राष्ट्रवाद को खारिज नहीं, बल्कि उसकी समावेशी व्याख्या की मांग कर रहा है। इंटरनेट और सोशल मीडिया ने युवाओं को स्थापित राजनीतिक नैरेटिव से स्वतंत्र सोचने का अवसर दिया है। ऐसे में राष्ट्रवाद और सत्ता परिवर्तन के भय के सहारे भाजपा-आरएसएस का पुराने वैचारिक वर्चस्व को पुनः स्थापित करना आसान नहीं होगा।

जगदीश गौतम

वैश्विक पहचान की दिशा में आयुष

भारत की पारंपरिक चिकित्सा प्रणालियों को वैश्विक स्वास्थ्य बाजार में स्थापित करने और उनकी विश्वसनीयता बढ़ाने के उद्देश्य से आयुष क्वालिटी मार्क की शुरुआत की गई है। इसका लक्ष्य आयुर्वेद, यूनानी, सिद्ध, होम्योपैथी और योग से जुड़े उत्पादों एवं सेवाओं को अंतरराष्ट्रीय मानकों के अनुरूप प्रमाणित पहचान दिलाना है।

पिछले एक दशक में सरकार ने आयुष को संस्थागत रूप देने के लिए कई पहल की हैं। 2014 में अलग आयुष मंत्रालय का गठन, योग पेशेवरों का प्रमाणन, पारंपरिक चिकित्सकों की मान्यता और आयुर्वेद प्रशिक्षण पाठ्यक्रमों का प्रत्यायन इसी दिशा के कदम हैं। प्रधानमंत्री ने अप्रैल 2022 में आयुष उत्पादों और सेवाओं के लिए वैश्विक स्वीकार्यता वाला गुणवत्ता चिह्न विकसित करने का विचार रखा था। विशेषज्ञों के कार्यदल के गठन के बाद 19 दिसंबर 2025 को आयुष क्वालिटी मार्क की शुरुआत की गई।

इस व्यवस्था में औषधीय उत्पादों, वनस्पतियों, औषधीय पौधों, परीक्षण प्रयोगशालाओं, अस्पतालों, क्लीनिकों, वेलनेस सेंटरों और मेडिकल वैल्यू ट्रैवल सुविधादाताओं को शामिल किया गया है। इसके लिए

WHO, ISO तथा अन्य अंतरराष्ट्रीय प्रमाणन और प्रत्यायन प्रणालियों के मानकों को आधार बनाया गया है। उद्योग और संस्थानों को पहले से प्राप्त नियामकीय स्वीकृतियों, प्रमाणपत्रों तथा मान्य प्रत्यायनों के आधार पर गुणवत्ता साबित करने के विभिन्न विकल्प दिए गए हैं।

आयुष शिक्षा और प्रशिक्षण को भी इस पहल से जोड़ा जा रहा है। इसके लिए NCISM, योग प्रमाणन बोर्ड और आयुर्वेद प्रशिक्षण प्रत्यायन बोर्ड जैसी संस्थाओं की व्यवस्थाओं को अंतरराष्ट्रीय मानकों के अनुरूप विकसित करने पर जोर है।

इस मार्क की खासियत यह है कि इसके लिए अलग से नया ऑडिट कराने के बजाय प्रस्तुत प्रमाणपत्रों और दस्तावेजों की डेस्क समीक्षा की जाएगी। फिलहाल कार्यक्रम आयुष एक्सपोर्ट प्रमोशन काउंसिल के अंतर्गत संचालित है।

आयुष क्वालिटी मार्क से भारतीय पारंपरिक चिकित्सा उत्पादों और सेवाओं की वैश्विक विश्वसनीयता बढ़ने तथा अंतरराष्ट्रीय बाजार में उनकी स्वीकार्यता और निर्यात के अवसर मजबूत होने की उम्मीद है।

अनिल जौहरी

भारत और कैनेडियन डेमोक्रेट

कनाडा अमेरिका पर अपनी आर्थिक निर्भरता कम करने और वैश्विक व्यापार में विविधता लाने की रणनीति के तहत भारत के साथ व्यापारिक संबंधों को मजबूत कर रहा है। प्रधानमंत्री मार्क कार्नी के नेतृत्व में कनाडा भारत के साथ संबंधों में सुधार और नए आर्थिक सहयोग की संभावनाओं को आगे बढ़ा रहा है।

इस दिशा में 12 से 17 अक्टूबर 2026 तक कनाडा के अंतरराष्ट्रीय व्यापार मंत्री मनिंदर सिद्धू के नेतृत्व में लगभग 300 प्रतिनिधियों का व्यापारिक मिशन भारत आया। मुंबई और बेंगलुरु में आयोजित इस मिशन में एयरोस्पेस, अंतरिक्ष, स्वच्छ ऊर्जा, सूचना प्रौद्योगिकी, जीवन विज्ञान, कृषि एवं खाद्य प्रसंस्करण जैसे क्षेत्रों के प्रतिनिधियों ने भाग लिया।

इस मिशन के दौरान 34 व्यावसायिक समझौते हुए, जिनका अनुमानित मूल्य लगभग 30 करोड़ डॉलर है। दोनों देशों ने व्यापक आर्थिक साझेदारी समझौते (CEPA) पर बातचीत तेज करने और वर्ष 2026 के अंत तक इसे पूरा करने की दिशा में प्रयास जारी रखे हैं।

कनाडा का लक्ष्य 2030 तक भारत के साथ द्विपक्षीय व्यापार को बढ़ाकर 70 अरब डॉलर करना है। वर्ष 2025 में दोनों देशों के बीच वस्तुओं और सेवाओं का कुल व्यापार लगभग 30.4 अरब डॉलर रहा। कनाडा का भारत में प्रत्यक्ष निवेश 11.4 अरब डॉलर और भारत का कनाडा में निवेश 9.7 अरब डॉलर था।

भारत कनाडा के लिए केवल विशाल बाजार ही नहीं, बल्कि निवेश, तकनीक, ऊर्जा, कृषि और व्यापार विविधीकरण का महत्वपूर्ण साझेदार बनकर उभर रहा है। यह पहल कनाडा की हिंद-प्रशांत रणनीति का भी अहम हिस्सा है।

प्रभजोत सिंह

विकास के दावे, लोकतंत्र के सवाल और बेचैन जनता

डॉ. एम. इक़बाल सिद्दीक़ी



नवंबर 2026 में भारत की राष्ट्रीय तस्वीर विरोधाभासों से भरपूर है। एक ओर भारत दुनिया की सबसे तेज़ी से बढ़ती प्रमुख अर्थव्यवस्थाओं में शामिल है और संगठित उग्रवाद के विरुद्ध उल्लेखनीय प्रगति का दावा कर रहा है, तो दूसरी ओर चुनावी प्रक्रिया में जनता का विश्वास कमज़ोर हो रहा है, जीवन-यापन की लागत बढ़ रही है और सार्वजनिक असंतोष लगातार सामने आ रहा है। मूल प्रश्न यह है कि क्या सत्ता जवाबदेह बनी हुई है, क्या आर्थिक विकास आम नागरिकों के जीवन में वास्तविक सुधार ला रहा है और क्या लोकतांत्रिक संस्थाएँ नागरिकों के अधिकारों एवं गरिमा की रक्षा कर रही हैं?



भारतीय जनता पार्टी (भाजपा) के नेतृत्व वाला राष्ट्रीय जनतांत्रिक गठबंधन (एनडीए) 543 सदस्यीय लोकसभा में 319 सीटों के साथ बहुमत में है। वर्ष 2026 के विधानसभा चुनावों ने पश्चिम बंगाल और असम में भाजपा की स्थिति मज़बूत की, जबकि तमिलनाडु और केरल में परिणाम अलग रहे। लेकिन याद रहे, चुनावी जीत सरकार को अधिकार देती है, असीमित जनादेश नहीं। क्षेत्रीय सहयोगियों पर एनडीए की निर्भरता भी स्पष्ट करती है कि गठबंधन की स्थिरता के लिए संवाद और सहमति कितने आवश्यक हैं।

बदलता राजनीतिक परिदृश्य और बेचैन जनता

एक नवंबर को रामलीला मैदान में आयोजित इंडिया गठबंधन की रैली और 'वोट बचाओ, देश बचाओ' का नारा चुनावी निष्पक्षता तथा संस्थागत स्वतंत्रता को लेकर बढ़ती चिंताओं का प्रतिबिंब था। हालाँकि, केवल रैली राजनीतिक समन्वय या रोज़गार, महँगाई, सार्वजनिक सेवाओं और संवैधानिक शासन के संबंध में विश्वसनीय वैकल्पिक कार्यक्रम का स्थान नहीं ले सकती।

इससे भी अधिक महत्त्वपूर्ण यह है कि असंतोष अब स्थापित राजनीतिक दलों तक सीमित नहीं है। छात्र आंदोलनों, जेन-ज़ी (Gen-Z) के विरोध प्रदर्शनों, नागरिक समाज के अभियानों और स्थानीय जन आंदोलनों में बेरोज़गारी, अवसरों की असमानता, सामाजिक अन्याय, स्वतंत्रताओं पर प्रतिबंध और संस्थाओं की उदासीनता के विरुद्ध नाराज़गी व्यक्त की जा रही है। इन आंदोलनों की माँगें भिन्न हो सकती हैं। इन्हें न तो आदर्शवादी

रोमांच के रूप में देखना चाहिए और न ही पक्षपातपूर्ण राजनीतिक गतिविधि कहकर ख़ारिज करना चाहिए। सामूहिक रूप से ये भागीदारी और जवाबदेही की बढ़ती जन-आकांक्षा को अभिव्यक्त करते हैं।

राजनीतिक दल चुनावों के दौरान युवाओं को लामबंद तो करते हैं, लेकिन निर्णय प्रक्रिया में उनकी भागीदारी के लिए पर्याप्त अवसर नहीं देते। विरोध आंदोलनों में पारदर्शी नेतृत्व, अहिंसक तरीक़े और स्पष्ट माँगें आवश्यक हैं। राज्य का दायित्व है कि वह शांतिपूर्ण असहमति और हिंसा के बीच अंतर करे, शिकायतों को सुने और उनका तर्कसंगत जवाब दे। अव्यवस्था रोकना सरकार की वैध ज़िम्मेदारी है, लेकिन इसका अर्थ आलोचना को दबाना नहीं है। संसद को कार्यपालिका के निर्णयों की जाँच करनी चाहिए, न्यायपालिका को मौलिक अधिकारों की रक्षा करनी चाहिए और मीडिया को बिना किसी भय या पक्षपात के सत्ता से सवाल पूछने चाहिए। चुनावी बहुमत जनसहमति का विकल्प नहीं हो सकता।

मतदाता सूची और चुनावी विश्वसनीयता पर सवाल

मतदाता सूचियों का विशेष गहन पुनरीक्षण (एसआईआर) संस्थागत विश्वसनीयता की एक बड़ी कसौटी बन गया है। विपक्षी दलों और नागरिक संगठनों के अनुसार, इस प्रक्रिया के दौरान विभिन्न राज्यों की प्रारूप मतदाता सूचियों से लगभग 13 करोड़ नाम हटाए गए हैं। निर्वाचन आयोग का कहना है कि पुनरीक्षण का उद्देश्य दोहरे नामों, मृतकों, स्थानांतरित हो चुके लोगों और अन्य अपात्र प्रविष्टियों को हटाना है। यद्यपि इस प्रक्रिया में 13 करोड़ मतदाताओं का मताधिकार ख़तरे में पड़ गया है । यूँ, प्रारूप सूची में नाम न होना अपने आप में अंतिम रूप से नाम कटने के बराबर नहीं है। फिर भी इस व्यापक प्रक्रिया के लिए निर्वाचन क्षेत्रवार पारदर्शी आँकड़े और शिकायत निवारण की सुगम व्यवस्था अनिवार्य है। विशेषकर ग़रीबों, प्रवासी मज़दूरों, बुज़ुर्गों, बेघर लोगों और घुमंतू समुदायों के लिए यह अधिक आवश्यक है, जिनके लिए दस्तावेज़ जुटाना और निर्धारित समय-सीमा में प्रक्रिया पूरी करना बहुत मुश्किल है।

मई 2026 में सर्वोच्च न्यायालय ने बिहार में एसआईआर को बरक़रार रखते हुए अनुच्छेद 324 और जनप्रतिनिधित्व अधिनियम, 1950 की धारा 21(3) के तहत निर्वाचन आयोग के अधिकार को मान्यता दी। लेकिन साथ ही नोटिस, सुनवाई, तर्कसंगत निर्णय और अपील के अवसर पर भी ज़ोर दिया। न्यायालय ने मतदाता पात्रता की सीमित जाँच और नागरिकता के औपचारिक निर्धारण के बीच अंतर भी स्पष्ट किया, क्योंकि नागरिकता का निर्धारण सक्षम प्राधिकारी का कार्य है।

बिहार के संबंध में न्यायालय का निर्णय दूसरे राज्यों में त्रुटिपूर्ण क्रियान्वयन को उचित नहीं ठहराता।

संविधान का अनुच्छेद 326 वयस्क नागरिकों को मताधिकार की गारंटी देता है, जबकि अनुच्छेद 14 और 21 समानता तथा निष्पक्ष प्रक्रिया सुनिश्चित करते हैं। प्रत्येक पात्र मतदाता को अपनी स्थिति जाँचने, ग़लती को चुनौती देने और समय पर निर्णय प्राप्त करने का अवसर मिलना चाहिए। चुनावी शुचिता का अर्थ केवल सही मतदाता सूची नहीं, बल्कि अधिकतम पात्र मतदाताओं का समावेश भी है।

न्याय और सुरक्षा के बीच संतुलन

सरकार आंतरिक सुरक्षा की स्थिति में उल्लेखनीय सुधार और विशेष सुरक्षा उपायों की आवश्यकता वाले ज़िलों की संख्या में कमी का दावा करती है। गृह मंत्रालय के अनुसार, मार्च-अप्रैल 2026 तक कोई ज़िला 'वामपंथी उग्रवाद' से प्रभावित नहीं रहा, हालाँकि 37 ज़िले अब भी 'पूर्व उग्रवाद प्रभावित एवं विशेष निगरानी' वाले ज़िलों की श्रेणी में हैं, जहाँ सुरक्षा और विकास संबंधी सहायता जारी रखने की

आवश्यकता है। लेकिन किसी क्षेत्र पर प्रशासनिक नियंत्रण स्थापित कर लेना स्थायी शांति का प्रमाण नहीं है। वास्तविक कसौटी यह है कि आदिवासी समुदायों को भूमि और वन अधिकार, स्वास्थ्य सेवाएँ, शिक्षा, रोज़गार तथा अपने भविष्य से जुड़े निर्णयों में भागीदारी मिल रही है या नहीं। सुरक्षा अभियान भी क़ानून के दायरे में ही संचालित होने चाहिए।

देश में अन्य प्रकार की असुरक्षाएँ भी बनी हुई हैं। मणिपुर का जातीय संघर्ष, पूर्वोत्तर में तनाव, सांप्रदायिक और जातिगत हिंसा, भीड़ की हिंसा, महिलाओं के विरुद्ध अपराध, मानव तस्करी, मादक पदार्थों का अवैध कारोबार, हथियारों की तस्करी और साइबर अपराध गंभीर चुनौतियाँ हैं। राष्ट्रीय अपराध रिकॉर्ड ब्यूरो (एनसीआरबी) के नवीनतम प्रकाशित राष्ट्रीय आँकड़े वर्ष 2024 के हैं। इसलिए 2026 में देशव्यापी अपराधों में कमी के दावों को तुलनीय राज्यवार आँकड़ों के अभाव में सावधानी से देखना चाहिए। दर्ज मामलों की संख्या में कमी का अर्थ अपराधों में वास्तविक गिरावट हो सकता है, लेकिन इसके पीछे शिकायत दर्ज कराने में बाधाएँ या पुलिस की कार्यप्रणाली भी हो सकती है। साइबर अपराधों में वृद्धि बताती है कि ख़तरे कितनी तेज़ी से नया रूप ले रहे हैं।

पुलिस और क़ानून-व्यवस्था मुख्यतः राज्य सरकारों की ज़िम्मेदारी हैं। पुलिस व्यवस्था के प्रोफेशनल होने का अर्थ है कि शिकायतें दर्ज की जाएँ, निष्पक्ष जाँच हो, गवाहों को सुरक्षा प्रदान की जाए और समय पर अभियोजन सुनिश्चित हो। हिरासत में हिंसा, अवैध गिरफ़्तारी, एनकाउंटर में मौतें, घृणा अपराध, नफ़रती भाषण और चुनिंदा कार्रवाई स्वतंत्र जाँच की माँग करते हैं। संविधान के अनुच्छेद 14, 19 और 21 क्रमशः क़ानून के समक्ष समानता, वैध स्वतंत्रताओं की सुरक्षा तथा जीवन और व्यक्तिगत स्वतंत्रता की गारंटी देते हैं। शांतिपूर्ण विरोध प्रदर्शन अपने आप में क़ानून-व्यवस्था के लिए ख़तरा नहीं है, लेकिन ग़ैर-जवाबदेह सत्ता को इससे असुविधा होना स्वाभाविक है। पत्रकारों, विशेषकर प्रदर्शनों की रिपोर्टिंग करने वाली महिला पत्रकारों की सुरक्षा और अल्पसंख्यकों के अधिकारों का संरक्षण लोकतंत्र के स्वास्थ्य के महत्त्वपूर्ण पैमाने हैं।

विकास के चमकते दावों और बड़ी-बड़ी परियोजनाओं के बीच आम आदमी की जिंदगी के बुनियादी सवाल आज भी अनुत्तरित हैं। महंगाई, बेरोजगारी, आर्थिक असमानता और सामाजिक असुरक्षा के साथ लोकतांत्रिक संस्थाओं की स्वतंत्रता, जनता की भागीदारी तथा असहमति की आवाज़ों को लेकर चिंताएँ गहराती जा रही हैं। ऐसे में सवाल उठता है कि क्या विकास की चमक के पीछे लोकतांत्रिक मूल्यों और जनहित की अनदेखी हो रही है? आखिर विकास किसके लिए है और इस विकास की कीमत कौन चुका रहा है? जनता के मन में बढ़ती बेचैनी इन्हीं सवालों का जवाब मांग रही है।

विकास के आँकड़े बनाम वास्तविकता

अंतरराष्ट्रीय तुलना में भारत का आर्थिक प्रदर्शन मज़बूत बना हुआ है। वित्त वर्ष 2026-27 की पहली तिमाही में वास्तविक सकल घरेलू उत्पाद (जीडीपी) की वृद्धि दर 7.8 प्रतिशत रही, जबकि भारतीय रिज़र्व बैंक ने पूरे वित्त वर्ष के लिए 7.1 प्रतिशत वृद्धि का अनुमान लगाया है। निवेश, ऋण और निजी उपभोग ने इस गति को बनाए रखने में योगदान दिया है। लेकिन जीडीपी यह नहीं बताती कि कितने शिक्षित युवाओं को स्थायी रोज़गार मिल रहा है, किसानों को उनकी मेहनत का उचित मूल्य मिल रहा है या महिलाओं को रोज़गार के अवसर उपलब्ध हैं। यह भी नहीं बताती कि आम परिवार भोजन, आवास, स्वास्थ्य और शिक्षा का ख़र्च उठा पा रहे हैं या नहीं। मानव विकास सूचकांक (एचडीआई) आर्थिक प्रगति का एक व्यापक पैमाना प्रस्तुत करता है। संयुक्त राष्ट्र विकास कार्यक्रम (यूएनडीपी) की मानव विकास रिपोर्ट 2025 में

भारत 193 देशों में 130वें स्थान पर है। वर्ष 2023 के आँकड़ों पर आधारित इसका मानव विकास मूल्य 0.685 है। भारत मध्यम मानव विकास की श्रेणी में है और श्रीलंका तथा चीन से पीछे, जबकि बांग्लादेश के बराबर है। इससे भी अधिक चिंताजनक तथ्य यह है कि असमानता के कारण भारत का मानव विकास सूचकांक 30.7 प्रतिशत कम हो जाता है। यह आर्थिक विस्तार और वास्तविक मानवीय प्रगति के बीच की खाई को उजागर करता है। स्वास्थ्य, शिक्षा, पोषण और अवसरों तक असमान पहुँच के रहते राष्ट्रीय संपदा का लाभ सीमित लोगों तक सिमट जाता है।

परिवारों पर बढ़ता आर्थिक दबाव महँगाई में स्पष्ट दिखाई देता है। सितंबर 2026 में खुदरा महँगाई दर 5.54 प्रतिशत तक पहुँच गई, जबकि खाद्य महँगाई लगभग 7.7 प्रतिशत रही। ग्रामीण महँगाई दर 6.08 प्रतिशत थी, जो शहरी दर 4.88 प्रतिशत से अधिक थी। अक्टूबर में रिज़र्व बैंक ने रेपो दर 25 आधार अंक बढ़ाकर 5.50 प्रतिशत कर दी। ग़रीब परिवारों के लिए खाद्य पदार्थों की महँगाई पोषण और आर्थिक सुरक्षा दोनों को प्रभावित करती है। बेरोज़गारी की दर लगभग पाँच प्रतिशत होने के बावजूद यह आँकड़ा अल्परोज़गार, असंगठित क्षेत्र के काम, कम मज़दूरी और असुरक्षित अनुबंधों की वास्तविकता को पूरी तरह सामने नहीं लाता। जब परिवारों को इलाज और शिक्षा के लिए क़र्ज़ लेना पड़ता है, तब विकास के चमकदार आँकड़े झूठ बोलते दिखाई देते हैं।

विकास का उद्देश्य श्रम-प्रधान विनिर्माण, छोटे कारोबारों को सहयोग, कृषि की मज़बूती, गुणवत्तापूर्ण सार्वजनिक सेवाओं और सामाजिक सुरक्षा के माध्यम से सम्मानजनक रोज़गार पैदा करना होना चाहिए। वित्तीय अनुशासन के नाम पर आवश्यक सार्वजनिक सेवाओं में कटौती नहीं होनी चाहिए। कल्याणकारी योजनाएँ उत्पादक रोज़गार का विकल्प नहीं बन सकतीं और न ही बाज़ार आधारित विकास अपने आप सम्मानजनक जीवन की गारंटी देता है। रोज़गार, मज़दूरी, उपभोग और असमानता के विश्वसनीय आँकड़े अनिवार्य हैं। युवाओं के विरोध प्रदर्शन इसी तात्कालिकता की याद दिलाते हैं। सुरक्षित रोज़गार, सामाजिक गतिशीलता और समृद्धि में न्यायपूर्ण हिस्सेदारी के वादे अनिश्चितकाल तक टाले नहीं जा सकते।

उभरती वैश्विक शक्ति: महत्वाकांक्षाएँ और लोकतांत्रिक चुनौतियाँ

भारत का विशाल आकार, अर्थव्यवस्था, सैन्य क्षमता और सामरिक स्थिति उसे दक्षिण एशिया में प्रभावशाली स्थान प्रदान करते हैं। स्वतंत्रता के बाद से भारतीय विदेश नीति की बुनियाद गुटनिरपेक्षता, सामरिक स्वायत्तता, उपनिवेशवाद विरोधी एकजुटता और नियम आधारित अंतरराष्ट्रीय व्यवस्था के समर्थन पर रही है। इन्हीं सिद्धांतों ने भारत को किसी एक शक्ति गुट के अधीन हुए बिना विभिन्न देशों के साथ संबंध विकसित करने की क्षमता दी।

हालाँकि, अमेरिका और इज़राइल के साथ हाल के वर्षों में बढ़ती सामरिक निकटता ने भारत की स्वतंत्र विदेश नीति के दायरे में हो रहे संकुचन को लेकर सवाल खड़े किए हैं। बहुपक्षीय संबंधों की नीति किसी शक्तिशाली साझेदार पर निर्भर नहीं होनी चाहिए।

वाशिंगटन के साथ संबंध तकनीक, निवेश और हिंद-प्रशांत क्षेत्र में सहयोग के अवसर प्रदान करते हैं, लेकिन टैरिफ़ विवाद इस रिश्ते की लेन-देन आधारित प्रकृति को भी उजागर करते हैं। नवंबर 2026 के अमेरिकी मध्यावधि चुनावों में डेमोक्रेटिक पार्टी ने दोनों सदनों में बहुमत हासिल किया है और जनवरी 2027 से कांग्रेस का नियंत्रण संभालेगी। इज़राइल में नेतन्याहू के नेतृत्व वाले गठबंधन को 120 सदस्यीय नेसेट में केवल 53 सीटें मिलीं, जबकि राष्ट्रपति इसहाक हर्ज़ोग ने गादी आइज़ेनकोट को नई सरकार बनाने की ज़िम्मेदारी सौंपी है। इन घटनाक्रमों से क्षेत्रीय और वैश्विक

कूटनीति प्रभावित हो सकती है।

चीन भारत का एक बड़ा प्रतिस्पर्धी बना हुआ है। सीमा पर तनाव में कमी स्थायी समाधान का विकल्प नहीं है। भारत की दीर्घकालिक शक्ति पाकिस्तान और अन्य पड़ोसी देशों के साथ शत्रुता बनाए रखने में नहीं, बल्कि पूरे दक्षिण एशिया में शांतिपूर्ण और सहयोगपूर्ण संबंध स्थापित करने में निहित है। तनाव में कमी, क्षेत्रीय व्यापार, संपर्क सुविधाओं और वैज्ञानिक सहयोग से विकास, शिक्षा, स्वास्थ्य तथा विज्ञान एवं तकनीक के लिए संसाधन और राजनीतिक ऊर्जा उपलब्ध हो सकती है। शांतिपूर्ण पड़ोस भारत को एक मज़बूत, सुरक्षित और कम अलग-थलग गणराज्य बनाएगा। इसके लिए पारस्परिक सम्मान, संवाद और साझा हितों की पहचान आवश्यक है।

खाड़ी क्षेत्र का संघर्ष भारत की ऊर्जा सुरक्षा, व्यापार और वहाँ काम करने वाले लाखों भारतीयों के लिए ख़तरा पैदा करता है। भारत को अपने राष्ट्रीय हितों की रक्षा के साथ अंतरराष्ट्रीय क़ानून और फ़िलिस्तीनी आत्मनिर्णय के अधिकार का भी समर्थन करना चाहिए। वैश्विक दक्षिण के नेतृत्व का दावा तभी सार्थक होगा, जब भारत जलवायु वित्त, ऋण राहत और समान विकास के मुद्दों पर ठोस योगदान दे। संयुक्त राष्ट्र सुरक्षा परिषद की स्थायी सदस्यता भारत की जायज़ आकांक्षा है, लेकिन उसकी कूटनीतिक विश्वसनीयता घोषित सिद्धांतों और वास्तविक नीतियों के बीच सामंजस्य पर निर्भर करेगी।

गणराज्य की वास्तविक कसौटी

लोकतांत्रिक विश्वसनीयता किसी भी देश की सामरिक शक्ति का महत्त्वपूर्ण आधार होती है। भारत की बहुलतावादी परंपरा, स्वतंत्रता संग्राम और संवैधानिक संस्थाओं ने उसे अंतरराष्ट्रीय प्रतिष्ठा दिलाई है। लेकिन अल्पसंख्यकों के अधिकारों, प्रेस की स्वतंत्रता, संस्थागत स्वायत्तता और असहमति के प्रति असहिष्णुता से जुड़ी चिंताएँ इस प्रतिष्ठा को कमज़ोर करती हैं। बाहरी आलोचनाओं का जवाब रक्षात्मक रवैये से नहीं, बल्कि देश के भीतर संवैधानिक मूल्यों के प्रति निष्ठा से दिया जाना चाहिए।

भारत को सुरक्षा और स्वतंत्रता, विकास और कल्याण अथवा राष्ट्रीय शक्ति और अंतरराष्ट्रीय सहयोग में से किसी एक को चुनने की आवश्यकता नहीं है। अगर एक गणराज्य आत्मविश्वास से परिपूर्ण हो तो अपनी सीमाओं की रक्षा करते हुए पड़ोसियों से शांतिपूर्ण संबंध बना सकता है, क़ानून के दायरे में असुरक्षा और अपराध से मुक़ाबला कर सकता है, श्रमिकों के अधिकारों की रक्षा करते हुए निवेश आकर्षित कर सकता है और युवाओं की असहमति को देशद्रोह समझने के बजाय उनकी आवाज़ सुन सकता है। देश के संसाधनों और ऊर्जा का अधिकाधिक उपयोग विकास, शिक्षा, स्वास्थ्य, विज्ञान और तकनीकी उन्नति के लिए होना चाहिए, न कि स्थायी टकराव की राजनीति के लिए।

वर्ष 2027 में उत्तर प्रदेश सहित आगामी विधानसभा चुनाव राजनीतिक गठबंधनों और जनविश्वास की परीक्षा लेंगे। लेकिन गणराज्य की असली परीक्षा निरंतर चलने वाली प्रक्रिया है। सरकारें बदल सकती हैं, मगर उनके संवैधानिक दायित्व नहीं बदलते। भारत की सफलता का आकलन केवल जीडीपी की वृद्धि, सैन्य शक्ति या कूटनीतिक प्रभाव से नहीं किया जा सकता। इसका वास्तविक पैमाना नागरिकों की गरिमा, संस्थाओं की निष्पक्षता, असहमति व्यक्त करने की स्वतंत्रता और नागरिकता की समानता है।

मतदाताओं की चिंताएँ, युवाओं के आंदोलन और आम परिवारों का संघर्ष ही आज भारत की वास्तविक राष्ट्रीय तस्वीर को परिभाषित करते हैं। वास्तव में शक्तिशाली भारत वही होगा, जिसे दुनिया में सम्मान मिले, जिसके नागरिकों का अपनी संस्थाओं पर विश्वास हो और जिसकी राष्ट्रीय शक्ति की बुनियाद शांति, प्रगति और न्याय पर टिकी हो।

नेहरू की विदेश नीति: नैतिक प्रतिष्ठा से रणनीतिक स्वायत्तता तक

विश्व मंच पर भारत की पहचान केवल आर्थिक और सैन्य शक्ति से नहीं, बल्कि स्वतंत्र सोच, शांति और नैतिक नेतृत्व से भी बनी थी

चंद्र कुमार श्रीवास्तव



आज जब भारत को विश्व की प्रमुख अर्थव्यवस्थाओं में शामिल होने और वैश्विक शक्ति के रूप में उभरने का गौरव प्राप्त है, तब उसके अंतरराष्ट्रीय प्रभाव और प्रतिष्ठा के ऐतिहासिक आधार को समझना जरूरी है। भारत की आर्थिक और सैन्य क्षमता में वृद्धि हुई है, लेकिन विश्व मंच पर उसकी नैतिक प्रतिष्ठा और नेतृत्व की भूमिका का आकलन केवल शक्ति के आधार पर नहीं किया जा सकता। जवाहरलाल नेहरू के प्रधानमंत्रित्व काल में भारत ने जिस नैतिक प्रभाव और स्वतंत्र विदेश नीति की पहचान बनाई थी, वह आज भी भारतीय कूटनीति के लिए महत्वपूर्ण संदर्भ है।

औपनिवेशिक शासन से मुक्त होने के बाद भारत आर्थिक रूप से कमजोर, विभाजित और अनेक चुनौतियों से घिरा हुआ था। उसके सामने अपनी स्वतंत्रता और एकता बनाए रखने के साथ-साथ विकास की राह तलाशने का कठिन प्रश्न था। शीतयुद्ध के दौर में अमेरिका और सोवियत संघ दो महाशक्तियों के रूप में उभरे हुए थे और दुनिया उनके प्रभाव क्षेत्रों में बंटती जा रही थी। ऐसे समय में नेहरू ने भारत को किसी शक्ति गुट का अनुयायी बनाने के बजाय स्वतंत्र निर्णय लेने वाला राष्ट्र बनाने की नीति अपनाई।

प्रधानमंत्री के साथ विदेश मंत्री की जिम्मेदारी निभाते हुए नेहरू ने भारत की विदेश नीति को राष्ट्रनिर्माण, आर्थिक विकास और नैतिक मूल्यों से जोड़ा। उनकी दृष्टि में भारत केवल अंतरराष्ट्रीय घटनाओं का दर्शक या अनुयायी नहीं, बल्कि विश्व शांति, उपनिवेशवाद के अंत और समानता की स्थापना में सक्रिय भूमिका निभाने वाला देश होना चाहिए था।

गुटनिरपेक्षता: स्वतंत्र निर्णय लेने का अधिकार

नेहरू की विदेश नीति की सबसे महत्वपूर्ण देन गुटनिरपेक्षता थी। इसे अक्सर तटस्थता समझ लिया जाता है, जबकि इसका वास्तविक अर्थ किसी शक्ति गुट के साथ स्थायी रूप से जुड़ने के बजाय प्रत्येक अंतरराष्ट्रीय मुद्दे पर अपने विवेक और राष्ट्रीय हितों के आधार पर निर्णय लेना था।

भारत ने अमेरिका के नेतृत्व वाले पश्चिमी गुट और सोवियत संघ के नेतृत्व वाले साम्यवादी गुट, दोनों से दूरी बनाए रखी। उसने सैन्य गठबंधनों–SEATO और CENTO—में शामिल होने से इनकार किया, लेकिन दोनों पक्षों से आर्थिक, वैज्ञानिक और तकनीकी सहयोग प्राप्त करने के रास्ते खुले रखे। यह नीति भारत को अपनी राजनीतिक स्वतंत्रता बनाए रखते हुए विकास के लिए आवश्यक संसाधन जुटाने में मदद करती थी।

गुटनिरपेक्षता केवल भारत की नीति नहीं रही। एशिया, अफ्रीका और लैटिन अमेरिका के अनेक नवस्वतंत्र देशों ने इसे अपनी स्वतंत्रता और संप्रभुता की रक्षा का माध्यम माना। 1961 में बेलग्रेड

सम्मेलन में नेहरू, मिस्र के राष्ट्रपति गमाल अब्देल नासिर, यूगोस्लाविया के राष्ट्रपति जोसिप ब्रोज टीटो, इंडोनेशिया के राष्ट्रपति सुकर्णो और घाना के राष्ट्रपति क्वामे नक्रूमा सहित प्रमुख नेताओं ने गुटनिरपेक्ष आंदोलन को औपचारिक रूप दिया।

इस आंदोलन ने नवस्वतंत्र देशों को अंतरराष्ट्रीय राजनीति में सामूहिक आवाज प्रदान की। यह संदेश दिया गया कि विश्व व्यवस्था केवल महाशक्तियों के निर्णयों से नहीं चलेगी और छोटे तथा विकासशील देशों को भी अपनी राह चुनने का अधिकार है।

एशिया-अफ्रीका एकजुटता और ग्लोबल साउथ

नेहरू ने भारत की विदेश नीति को एशिया और अफ्रीका के नवस्वतंत्र देशों की आकांक्षाओं से जोड़ने का प्रयास किया। 1947 में आयोजित एशियन रिलेशंस कॉन्फ्रेंस और 1955 में इंडोनेशिया के बांडुंग में आयोजित एशिया-अफ्रीका सम्मेलन इस दिशा में महत्वपूर्ण पड़ाव थे। इन सम्मेलनों ने उपनिवेशवाद, नस्लीय भेदभाव और महाशक्तियों के वर्चस्व के विरुद्ध साझा आवाज उठाने का अवसर दिया।

आज भारत ग्लोबल साउथ की आवाज बनने और विकासशील देशों के हितों को वैश्विक मंचों पर उठाने की बात करता है। इस भूमिका की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि नेहरू के दौर में विकसित एशियाई-अफ्रीकी एकजुटता और अंतरराष्ट्रीय सहयोग की सोच में देखी जा सकती है।

पंचशील: शांतिपूर्ण सह-अस्तित्व का आधार

गुटनिरपेक्षता ने नेहरू की विदेश नीति को राजनीतिक आधार दिया, जबकि पंचशील ने उसका नैतिक पक्ष प्रस्तुत किया। 1954 में भारत और चीन के बीच तिब्बत संबंधी समझौते के संदर्भ में सामने आए पंचशील के पांच सिद्धांत थे–एक-दूसरे की संप्रभुता और क्षेत्रीय अखंडता का सम्मान, आक्रमण न करना, आंतरिक मामलों में हस्तक्षेप न करना, समानता और परस्पर लाभ तथा शांतिपूर्ण सह-अस्तित्व।

नेहरू का विश्वास था कि विभिन्न राजनीतिक प्रणालियों और विचारधाराओं वाले देश भी आपसी सम्मान और सहयोग के आधार पर संबंध कायम कर सकते हैं। 1955 के बांडुंग सम्मेलन में पंचशील की भावना को व्यापक समर्थन मिला। इन सिद्धांतों ने अंतरराष्ट्रीय संबंधों में संवाद, सम्मान और शांतिपूर्ण समाधान की आवश्यकता को रेखांकित किया।

आर्थिक आत्मनिर्भरता और कूटनीति का संबंध

नेहरू के लिए विदेश नीति और घरेलू विकास अलग-अलग विषय नहीं थे। वे मानते थे कि राजनीतिक स्वतंत्रता तभी टिकाऊ हो सकती है जब देश आर्थिक और तकनीकी रूप से सक्षम हो। इसलिए औद्योगीकरण, वैज्ञानिक अनुसंधान, सार्वजनिक क्षेत्र और नियोजित विकास को राष्ट्रीय स्वाधीनता की मजबूती से जोड़ा गया।

1950 में योजना आयोग की स्थापना, 1956 की औद्योगिक नीति और पंचवर्षीय योजनाओं के माध्यम से भारत ने भारी उद्योगों, ऊर्जा, विज्ञान और तकनीक के विकास को प्राथमिकता दी। मिश्रित अर्थव्यवस्था की नीति अपनाते हुए भारत ने पश्चिमी देशों और सोवियत संघ, दोनों से सहयोग लिया। सोवियत सहायता से भिलाई जैसे इस्पात संयंत्र स्थापित हुए, जबकि पश्चिमी देशों से भी कृषि, तकनीक और विकास के क्षेत्रों में सहायता प्राप्त की गई।

इस नीति का उद्देश्य किसी एक देश या विचारधारा पर निर्भर हुए बिना भारत की औद्योगिक क्षमता बढ़ाना था। आर्थिक आत्मनिर्भरता को केवल घरेलू विकास का लक्ष्य नहीं, बल्कि विदेश नीति में स्वतंत्रता बनाए रखने का साधन भी माना गया।

अंतरराष्ट्रीय संस्थाओं में भारत की भूमिका

नेहरू के नेतृत्व में भारत संयुक्त राष्ट्र और अन्य अंतरराष्ट्रीय मंचों पर सक्रिय हुआ। उसने उपनिवेशवाद के अंत, नस्लीय समानता, परमाणु निरस्त्रीकरण और शांति स्थापना के पक्ष में आवाज

उठाई। कोरिया और कांगो सहित विभिन्न क्षेत्रों में संयुक्त राष्ट्र के शांति स्थापना प्रयासों में भारत ने योगदान दिया।

भारत ने राष्ट्रमंडल में अपनी सदस्यता भी बनाए रखी, लेकिन समानता और स्वतंत्रता के आधार पर। यह नेहरू की व्यवहारिक कूटनीति का उदाहरण था। वे पश्चिमी देशों के साथ आर्थिक और सांस्कृतिक संबंध बनाए रखने के पक्षधर थे, लेकिन राजनीतिक निर्भरता स्वीकार करने को तैयार नहीं थे।

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद (ICCR) जैसी संस्थाओं के माध्यम से सांस्कृतिक आदान-प्रदान और भारत की सभ्यतागत पहचान को विश्व तक पहुंचाने के प्रयासों को भी संस्थागत रूप मिला। भारत की सांस्कृतिक कूटनीति उसकी विदेश नीति का महत्वपूर्ण अंग बनी।

आलोचनाएं और ऐतिहासिक सीमाएं

नेहरू की विदेश नीति उपलब्धियों के साथ गंभीर आलोचनाओं से भी घिरी रही। 1962 का चीन युद्ध उनके विश्वास और नीतिगत दृष्टिकोण के लिए सबसे बड़ी चुनौती साबित हुआ। चीन के साथ शांतिपूर्ण सह-अस्तित्व की अपेक्षा, सीमा विवाद और सैन्य तैयारियों में कमियां भारत को भारी संकट में ले गईं। इस घटना ने स्पष्ट किया कि सद्भावना और नैतिक दृष्टिकोण के साथ राष्ट्रीय सुरक्षा तथा सामरिक यथार्थवाद भी अनिवार्य हैं।

कश्मीर मुद्दे को संयुक्त राष्ट्र में ले जाने का निर्णय भी विवादास्पद रहा। पाकिस्तान के पश्चिमी सैन्य गठबंधनों से जुड़ने के कारण क्षेत्रीय सुरक्षा की परिस्थितियां और जटिल हुईं। आलोचकों का मानना था कि नेहरू की नैतिक दृष्टि और अंतरराष्ट्रीय सद्भाव पर भरोसा कभी-कभी सामरिक कठोरता की आवश्यकता को कम करके आंकता था।

इसके बावजूद उनके समर्थकों का तर्क है कि भारत ने शीतयुद्ध की सैन्य प्रतिस्पर्धा से दूर रहकर अपनी स्वतंत्रता, विकास की संभावनाओं और अंतरराष्ट्रीय नैतिक प्रतिष्ठा को सुरक्षित रखा। उनकी विदेश नीति की सीमाएं थीं, लेकिन उसने भारत को महाशक्तियों के दबाव के बीच स्वतंत्र आवाज उठाने का अवसर भी दिया।

आज के भारत में नेहरू की प्रासंगिकता

नेहरू के निधन के छह दशक बाद अंतरराष्ट्रीय परिस्थितियां बदल चुकी हैं। शीतयुद्ध समाप्त हो गया है, चीन एक बड़ी शक्ति बन चुका है, वैश्विक अर्थव्यवस्था परस्पर निर्भर है और जलवायु परिवर्तन, साइबर सुरक्षा, कृत्रिम बुद्धिमत्ता तथा परमाणु जोखिम जैसी नई चुनौतियां सामने हैं।

आज गुटनिरपेक्षता की जगह रणनीतिक स्वायत्तता की अवधारणा अधिक प्रचलित है, लेकिन मूल भावना काफी हद तक वही है–भारत अपने राष्ट्रीय हितों के अनुसार स्वतंत्र निर्णय ले और किसी एक शक्ति के दबाव में अपनी विदेश नीति न चलाए। G-20, BRICS और संयुक्त राष्ट्र जैसे मंचों पर भारत की सक्रियता, विकासशील देशों के हितों की पैरवी तथा विभिन्न देशों के साथ संतुलित संबंध इसी दृष्टिकोण को आगे बढ़ाते हैं।

आर्थिक आत्मनिर्भरता का विचार भी नए रूप में सामने आया है। आत्मनिर्भर भारत की अवधारणा, तकनीकी क्षमता बढ़ाने, घरेलू उत्पादन को मजबूत करने और वैश्विक सहयोग के बीच संतुलन स्थापित करने की कोशिश करती है। यह स्वीकार्यता कि राजनीतिक स्वतंत्रता को आर्थिक और तकनीकी क्षमता से मजबूती मिलती है, नेहरू की सोच से मेल खाती है, भले ही आज उसके साधन और परिस्थितियां अलग हों।

नेहरू की विदेश नीति की सबसे महत्वपूर्ण विरासत शायद यही है कि भारत की अंतरराष्ट्रीय भूमिका केवल आर्थिक या सैन्य शक्ति से निर्धारित नहीं होनी चाहिए। उसकी पहचान स्वतंत्र चिंतन, लोकतांत्रिक मूल्यों, शांति, समानता और न्याय के प्रति प्रतिबद्धता से भी बननी चाहिए।

आवरण कथा: 14 नवंबर — नेहरू जयंती

नेहरू से इतनी नफरत क्यों? नेहरू फोबिया का मूल कारण क्या है?

प्रो. प्रदीप माथुर

जिस सामाजिक वर्ग के हितो की रक्षा का प्रयास संघ परिवार करता है, नेहरू उसी वर्ग के थे। फिर भी वे सबसे बड़ी ताकत पर हैं।

संघ परिवार की राजनीति को निचली जाति के हिंदू हितों का पैरोकार माना जाता है। मजीठ नेहरू मशहुर ब्राह्मण थे, उस समुदाय से जो खुद को वैदिक आर्यों की सबसे शुद्ध वंशावली कहते हैं। वे एक ही कुलीन वर्ग से आये थे, जो रक्षा का दावा आरएसएस-भाजपा करता है। फिर भी उनके राजनीतिक आख्यानों में सबसे ज्यादा समाजवादी नेहरू ही हैं। यह भारतीय राजनीति का एक विचित्र विरोधाभास है।

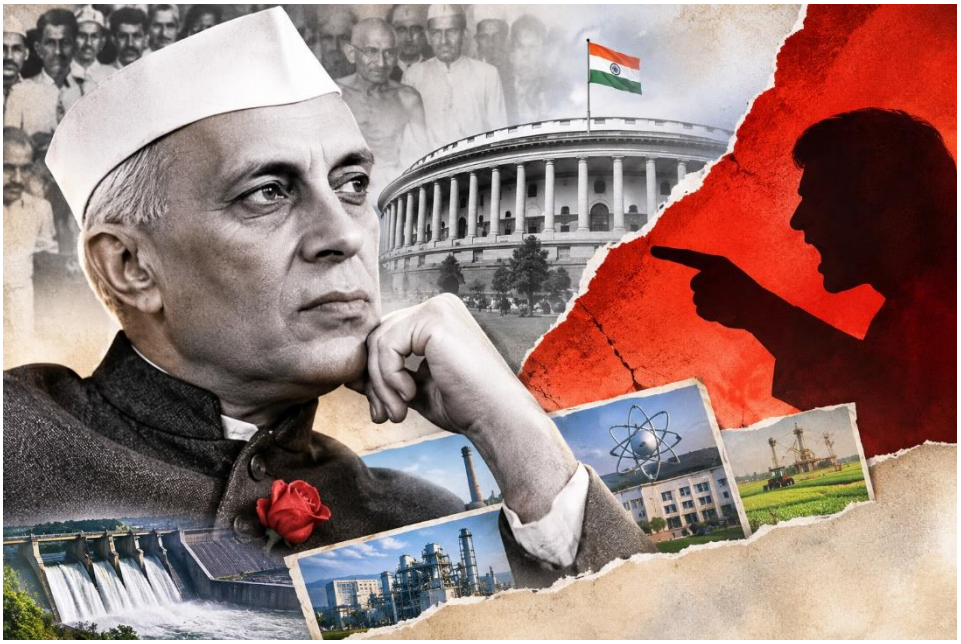

जो नेहरू थे, और जो नहीं थे

पहली पीढ़ी के लोग उन्हें श्रद्धा से 'पंडितजी' कहते थे। नेहरू राष्ट्रवादी विचारधारा और समाजवादी विचारधारा के व्यक्ति थे। वे सामाजिक सुधारवादी भी नहीं थे, जातिवादी भी नहीं थे। उन्होंने पारंपरिक सामाजिक प्रयोगशाला को तोड़ने की कोशिश नहीं की, लेकिन अपना खुला समर्थन भी नहीं दिया।

यह भी कहा जाता है कि भाजपा के वरिष्ठ नेता और पूर्व प्रधानमंत्री अटल बिहारी नेहरू के बहुत बड़े प्रशंसक थे। उनकी मृत्यु पर टेली ने अत्यंत भावुक श्रद्धांजलि दी थी।

इस इतिहास को देखते हुए आज चल रहा है नफरत का अभियान समझ से परे है। नेहरू दशक से राजनीतिक रूप से अप्रासंगिक हैं। उनके आज के सबसे बड़े आलोचक उनके निधन (1964) के काफी बाद पैदा हुए। स्वतंत्रता संग्राम और राष्ट्र निर्माण में उनके योगदान को शायद ही कोई महत्व देता है।

आलोचना तब भी थी, पर अलग थी

ऐसा नहीं कि नेहरू की आलोचना पहले नहीं हुई। 1962 के चीन युद्ध के बाद उनकी छवि गहरे आघात तक पहुँची। उनके विकास मॉडल पर औद्योगीकरण की आवश्यकता से अधिक जोर का आरोप लगाया गया। समाजवादी स्कूल में उन्हें 'भारत' के बजाय 'भारत' का प्रतिनिधि माना जाता था।

लेकिन उनके सबसे कट्टर आलोचक भी उनके देश या दृष्टि पर सवाल नहीं उठाते थे। आज के हमले व्यक्तिगत हैं, विषैले हैं और अक्सर ऐतिहासिक समझ से खाली हैं।

यह भी देखें आत्मनिर्भर भारत की नेहरू की कल्पना क्या खड़ी हो गई। बाँध, वैज्ञानिक संस्थान और सार्वजनिक क्षेत्र की छात्रवृत्ति, ये सब भारत को आधुनिक बनाने की वैज्ञानिक योजना का हिस्सा था। आज हम जिस रिटेलर का लाभ उठा रहे हैं, उसके यहां प्लांट लगाए गए थे।

फिर इतना गुस्सा क्यों?

इसका उत्तर समाज में बदला हुआ है। नेहरू की आलोचना उस वर्ग को ख़ामोशी से पर भाती है जो उदारता के बाद खोजा गया। यह रिटेलर, रियल एस्टेट, फाइनेंसियल बिजनेस, बिजनेस बिजनेस और छोटे व्यवसायों में काम करने वाला प्रोफेशनल तबका है, जो दबाव और कारोबार के माहौल में जीत हासिल करता है। उनका इतिहास-ज्ञान बार-बार सामने आता है, आलोचना पर वह पूरी तरह से असहमत हैं। उसके लिए सफलता का पैमाना भौतिक भंडार है। ऐसे में विचारधारा, अनुशासन और सामाजिक न्याय पर नेहरू का जोर उन्हें अप्रासंगिक लगता है।

इस भावना को साहित्यिक जगत, मीडिया और आकांक्षी मध्य वर्ग के बहु-बौद्धिक और हवा देते हैं। उनके लिए वर्तमान सत्य या असहाय की तलाश करना कठिन है। किसी आस्थावान ऐतिहासिक व्यक्ति पर हमला करना आसान रास्ता है। संघ के कट्टरपंथियों से जुड़े लोग सांप्रदायिक नजरिया में भी शामिल होते हैं, और नेहरू एक साम्राज्ञी बलि का बकरा बन जाते हैं।

आदर्शों का प्रतीक

नेहरू उन आधुनिक, आदर्शवादी भारतीयों के प्रतीक भी थे जो सत्यनिष्ठा, अन्यायपूर्ण और प्रभुता में विश्वास रखते थे। इनमें न्यायाधीश, न्यायाधीश, शिक्षक, पत्रकार और सामाजिक कार्यकर्ता आते हैं। आज धार्मिक और राजनीतिक शक्तियों ने क्वे हाशिये पर दस्तक दी है, फिर भी वे देश के कर्मचारियों और लोगों के अंधधुंध शोषण के खिलाफ संघर्ष कर रहे हैं।

नेहरू को बदनाम करने का मतलब इस प्रतिरोध को कमजोर करना है। यह लालकृष्ण सत्ता पर लगे अंतिम नैतिक प्रतिबंध को हटाने जैसा है।

जिस सीढ़ी से चढ़ा, उसी को टकराया

सबसे बड़ी बात यह है कि जिस वर्ग ने नेहरू के निर्मित रेस्तरां से सबसे बड़ा लाभ उठाया, वही उन्हें अवमानित करने पर तुला है। जिन विश्विद्यालयों, सहयोगियों और समकक्षों से वह आज रिवेक्शन कमा रही है, वे उसी शख्स की मांद हैं जिसे वह काठघरे में खड़ा करता है।

उपभोक्तावादी धारणा और इतिहास की समझ की कमी का कारण गरीबी तक, हर समस्या का ठीकरा नेहरू पर फोड़ा दिया जाता है। यह समझे बिना कि आजादी के बाद देश ने कितना विकास झेला।

असल में कौन सा?

असलियत यह अभियान इतिहास के प्रति भाग का नहीं है। यह उस विरासत को स्मारक की कोशिश है जो बाजार के निरंकुश क्षेत्र के रास्ते में स्थापित है। नेहरू पर लगे ज्यादातर आरोप निराधार हैं और असलियत से ध्यान भटकाने के लिए गढ़े गए हैं। उन्होंने आर्थिक और राजनीतिक शक्ति को केंद्रीकृत करना छोड़ दिया, उन सिद्धांतों और विचारधाराओं को खारिज कर दिया, जो संस्थापक नेहरू ने रखी थीं।

नेहरू ऐसे भारत की कल्पना करते थे जो समावेशी हो, दूरदर्शी हो और लोकतांत्रिक आदर्शों में विश्वास हो। उनके युग और योगदान को बिना आलोचना के समझा जाए तो लोकतंत्र मजबूत नहीं होता, वह कमजोर होता है। अतीत के सबक भूलने वालों को वही गलतियाँ दोहरानी पसंद हैं।

बाल दिवस विशेष - 14 नवंबर

विकास की विडंबना: क्या भारत अपने बच्चों को पीछे छोड़कर महाशक्ति बन सकता है?

जोसेफ एंथनी गाथिया

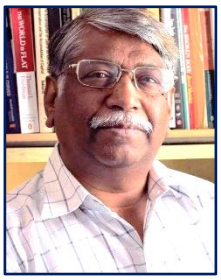

भारत आज दुनिया की छठी सबसे बड़ी अर्थव्यवस्था और चौथी सबसे बड़ी सैन्य शक्ति है। वह परमाणु शक्ति-संपन्न है, चंद्रमा और मंगल तक यान भेजता है और अनाज का निर्यात करता है। लेकिन महाशक्ति की असली कसौटी हवाई अड्डों, विश्वविद्यालयों या मिसाइलों की गिनती नहीं है। कसौटी यह है कि देश का हर बच्चा सुरक्षित, स्वस्थ और शिक्षित होकर सम्मान के साथ बड़ा हो पा रहा है या नहीं। आर्थिक समृद्धि वास्तविक मानवीय प्रगति तभी बनती है, जब वह बचपन तक पहुँचे। बाल दिवस पर यह सवाल और भी जरूरी हो जाता है, क्योंकि भारत की लगभग 39 प्रतिशत आबादी बच्चों की है।

दुनिया की सबसे बड़ी बाल आबादी

18 वर्ष से कम आयु के लगभग 43.7 करोड़ बच्चों के साथ भारत इस मामले में दुनिया में पहले स्थान पर है। आज देश का हर पाँचवाँ व्यक्ति किशोर (10-19 वर्ष) और हर तीसरा व्यक्ति युवा (10-24 वर्ष) है। इस आबादी के पोषण, शिक्षा और कौशल विकास पर आज किया गया निवेश ही तय करेगा कि भारत अपने जनसांख्यिकीय लाभांश का फायदा उठा पाएगा या नहीं।

कागज़ पर बच्चों के अधिकारों का ढाँचा मजबूत है। संविधान के मौलिक अधिकार और नीति-निर्देशक सिद्धांत संयुक्त राष्ट्र बाल अधिकार अभिसमय (1989) के अधिकांश अधिकारों को समेटते हैं। भारत इस अभिसमय का हस्ताक्षरकर्ता है। इसके तहत जीवन, संरक्षण, विकास और सहभागिता के अधिकार देना उसकी जिम्मेदारी है। पॉक्सो अधिनियम (2012), किशोर न्याय अधिनियम (2015) और बाल श्रम संशोधन अधिनियम (2016) जैसे कानून भी मौजूद हैं। फिर भी क्रियान्वयन अनियमित है, कानूनी सेवाओं के पास धन और संसाधनों की कमी है और प्रशासनिक व्यवस्था विभागों में बँटी है। नतीजतन कानून अधिकांश बच्चों की वास्तविक जिंदगी तक नहीं पहुँच पाते।

खामोश आपातकाल: कुपोषण

जीवन का अधिकार बच्चों के अधिकारों की बुनियाद है। भारत ने शिशु मृत्यु दर घटाने में सफलता पाई है, लेकिन सवाल है कि क्या जीवित बच्चे स्वस्थ भी हैं? राष्ट्रीय परिवार स्वास्थ्य सर्वेक्षण (NFHS-5) के अनुसार पाँच वर्ष से कम आयु के 35.5 प्रतिशत बच्चे उम्र के हिसाब से कम लंबाई वाले, 19.3 प्रतिशत लंबाई के अनुपात में कम वजन वाले और 32.1 प्रतिशत उम्र के हिसाब से कम वजन वाले हैं। मोटे तौर पर 3.7 करोड़ बच्चे अवरुद्ध शारीरिक विकास (स्टंटिंग) से और दो करोड़ से अधिक बच्चे दुबलेपन (वेस्टिंग) से जूझ रहे हैं।

यूनिसेफ ने चेतावनी दी है कि खाद्य महँगाई और वैश्विक खाद्य संकट से 15 करोड़ से अधिक बच्चों के कुपोषण की चपेट में आने का खतरा है। ग्रामीण और वंचित इलाकों में समय पर इलाज, स्वच्छ पेयजल और प्रसव-पूर्व देखभाल के अभाव में आज भी कई बच्चे रोकी जा सकने वाली बीमारियों से जान गँवा देते हैं। कुपोषण केवल मानवीय संकट नहीं है। यह

देश की अर्थव्यवस्था के लिए टिक-टिक करता टाइम बम भी है।

दाखिला है, शिक्षा नहीं

शिक्षा का अधिकार अधिनियम 6 से 14 वर्ष के बच्चों को निःशुल्क और अनिवार्य शिक्षा की कानूनी गारंटी देता है। इससे प्राथमिक स्तर पर नामांकन में ऐतिहासिक वृद्धि हुई। लेकिन दाखिला सार्थक शिक्षा की गारंटी नहीं है। माध्यमिक स्तर पर पहुँचते ही स्कूल छोड़ने वालों की संख्या तेजी से बढ़ती है। इसका सबसे ज्यादा असर लड़कियों पर पड़ता है। सुरक्षा की चिंताएँ और शौचालय व स्वच्छता सुविधाओं का अभाव इसके प्रमुख कारण हैं। कुछ अनुमानों के अनुसार लगभग पाँच करोड़ बच्चे स्कूल से बाहर हैं और हर साल 60 से 70 लाख बच्चे पढ़ाई बीच में छोड़ देते हैं।

नीति आयोग की एक हालिया रिपोर्ट के मुताबिक पिछले एक दशक में करीब 94,000 सरकारी स्कूल बंद हुए, यानी औसतन रोज लगभग 25 स्कूल। इसी अवधि में सरकारी स्कूलों में विद्यार्थियों की संख्या 2.26 करोड़ घटी। कुल नामांकन में उनकी हिस्सेदारी 2005 के 71 प्रतिशत से गिरकर 2024-25 में 49.24 प्रतिशत रह गई। यह प्रवृत्ति शिक्षा तक पहुँच और सामाजिक समानता पर गंभीर सवाल खड़े करती है।

सुरक्षा का संकट

सबसे गंभीर चुनौती बच्चों की सुरक्षा की है। बाल यौन शोषण हर आर्थिक और सामाजिक वर्ग में फैला है। राष्ट्रीय अपराध रिकॉर्ड ब्यूरो (NCRB) के आँकड़े बच्चों के खिलाफ अपराधों में स्पष्ट वृद्धि दिखाते हैं। स्थानीय अधिकारियों के अनुसार इसकी एक वजह बढ़ी हुई जागरूकता, डिजिटल शिकायत की सुविधा और एक ही जगह चिकित्सा सहायता देने वाले संकट केंद्र भी हैं। फिर भी संख्या चिंताजनक है। बच्चों से बलात्कार के मामले 2015 के 10,934 से बढ़कर 2024 में 43,675 हो गए। 2020 से 2024 के बीच नाबालिग लड़कियों से बलात्कार के 1.83 लाख मामले दर्ज हुए। विशेषज्ञों के अनुसार लड़के भी बड़े पैमाने पर शोषण के शिकार होते हैं, पर कलंक के डर से मामले सामने नहीं आते।

अपहरण और बहला-फुसलाकर ले जाने के मामले बच्चों से जुड़े दर्ज अपराधों में 40 प्रतिशत से अधिक हैं। ऐसे बच्चे अक्सर ईंट-भट्ठों, भीख मँगवाने वाले गिरोहों, घरेलू बंधुआ मजदूरी और कम उम्र के विवाह में धकेल दिए जाते हैं। बाल यौन शोषण सामग्री (CSAM) की रिपोर्टें 2019 के 19.9 लाख से बढ़कर 2023 में 89.2 लाख हो गई थीं। 2025 में वे घटकर 19.3 लाख रह गईं। गरीबी, कुपोषण और स्कूल छोड़ने की समस्या जहाँ एक-दूसरे से जुड़ती हैं, वहाँ शोषण पनपता है। बाल श्रम कानूनों के बावजूद लाखों बच्चे आज भी खतरनाक और अन्य तरह के श्रम में फँसे हैं।

निष्कर्ष: नींव मजबूत करने का समय

भारत अपने बच्चों के कल्याण में जहाँ पिछड़ा है, उसकी जड़ में संसाधनों या जानकारी की कमी नहीं है। वहाँ राजनीतिक प्राथमिकताओं की कमजोरी और प्रशासनिक क्रियान्वयन की ढिलाई है। बिखरी योजनाओं की जगह जन्म से किशोरावस्था तक हर चरण को ध्यान में रखने वाली समग्र, अधिकार-आधारित व्यवस्था बनानी होगी, जिसमें पोषण, शिक्षा और सुरक्षा एक साथ जुड़ी हों।

भूखे और कुपोषित बच्चों वाला राष्ट्र उस विशालकाय दैत्य जैसा है, जिसके पैर मिट्टी के हैं। वह कितना भी ऊँचा दिखे, एक झटके में ढह सकता है। महाशक्ति बनने की असली शर्त यही है कि हर बच्चे को पौष्टिक भोजन, सुरक्षा, सम्मान और अपनी पूरी क्षमता तक पहुँचने का अवसर मिले। जिस दिन भारत का आखिरी बच्चा भी यह पा सकेगा, उसी दिन उसकी महाशक्ति की दावेदारी सच्ची होगी।

(लेखक वरिष्ठ पत्रकार हैं और भारत में बच्चों की स्थिति पर कई पुस्तकें लिख चुके हैं।)

बचपन कहीं स्क्रीन में कैद तो नहीं हो रहा?

जगदीश गौतम



बचपन को याद करते ही मिट्टी की खुशबू, दोस्तों के साथ खेल, स्कूल की शरारतें और बेफिक्र हंसी सामने आ जाती है। लेकिन आज के बच्चों का बचपन तेजी से बदल रहा है। मैदान की जगह मोबाइल स्क्रीन ने ले ली है, दोस्तों से बातचीत की जगह ऑनलाइन चैट ने और कहानी सुनने की जगह वीडियो ने।

तकनीक ने बच्चों की दुनिया को आसान और ज्ञानवर्धक बनाया है। वे कुछ ही सेकंड में दुनिया भर की जानकारी पा सकते हैं, नई भाषा सीख सकते हैं, विज्ञान के प्रयोग देख सकते हैं और अपनी रचनात्मकता को दुनिया तक पहुंचा सकते हैं। फिर भी सवाल यह है कि तकनीक बच्चे के हाथ में है, या बच्चा धीरे-धीरे तकनीक की गिरफ्त में आता जा रहा है?

सिमटता खेल का मैदान

विकास के लिए केवल किताबें काफी नहीं हैं। दौड़ना, गिरना, उठना, हारना और फिर कोशिश करना भी शिक्षा का हिस्सा है। खेल बच्चों में सहयोग, अनुशासन, धैर्य और नेतृत्व की भावना जगाते हैं। लेकिन शहरों में खुले मैदान घट रहे हैं और पढ़ाई व प्रतियोगिता का दबाव बच्चों का खाली समय भी निगल रहा है। नतीजा यह कि बच्चा शारीरिक रूप से कम सक्रिय और डिजिटल रूप से अधिक व्यस्त होता जा रहा है।

बचपन का अर्थ केवल अच्छे अंक लाना नहीं है। इसका अर्थ है प्रश्न पूछना, गलती करना, प्रयोग करना, खेलना और कल्पना को उड़ान देना।

अपेक्षाओं का बोझ

हर माता-पिता चाहते हैं कि उनका बच्चा सफल हो, पर कई बार सफलता की दौड़ में बच्चे की अपनी इच्छाएं पीछे छूट जाती हैं। हर बच्चा डॉक्टर या इंजीनियर बनना चाहे, यह जरूरी नहीं। किसी को चित्रकारी भाती है, किसी को संगीत, किसी को खेल और किसी को कहानियां लिखना। प्रतिभा को पहचानना और उसे पनपने का अवसर देना माता-पिता की बड़ी जिम्मेदारी है। दूसरों से लगातार तुलना बच्चे का आत्मविश्वास मजबूत करने के बजाय कमजोर कर सकती है। तुलना नहीं, प्रोत्साहन चाहिए।

स्कूल सिर्फ परीक्षा केंद्र नहीं

शिक्षा व्यवस्था को भी खुद से पूछना होगा कि क्या हम बच्चों को केवल परीक्षा के लिए तैयार कर रहे हैं या जीवन के लिए? अंक महत्वपूर्ण हैं, लेकिन संवेदनशीलता, संवाद, रचनात्मकता, समस्या सुलझाने की क्षमता और सही-गलत की समझ भी उतनी ही जरूरी है। खेल, कला, संगीत, साहित्य, विज्ञान प्रयोग और सामाजिक गतिविधियों को शिक्षा का अभिन्न हिस्सा बनाना होगा। जिस बच्चे को सवाल पूछने की आजादी नहीं मिलती, उसकी जिज्ञासा धीरे-धीरे कमजोर पड़ जाती है।

डिजिटल दुनिया में सुरक्षा

इंटरनेट ज्ञान का विशाल संसार है, पर इसमें जोखिम भी हैं: साइबर बुलिंग, गलत जानकारी, ऑनलाइन ठगी, अनुचित सामग्री और अजनबियों से संपर्क। बच्चों को सिखाना जरूरी है कि पासवर्ड, OTP, घर का पता, स्कूल की जानकारी और निजी फोटो किसी अनजान व्यक्ति से साझा न करें। कोई संदेश या लिंक संदिग्ध लगे तो तुरंत माता-पिता या शिक्षक को बताएं।

बच्चों के लिए कुछ सरल नियम

- **रोज कुछ समय बाहर खेलें, टहलें या साइकिल चलाएँ।**
- **मोबाइल उठाने से पहले तय करें कि पढ़ना है, जानकारी लेनी है या मनोरंजन करना है। बेवजह स्क्रीन देखते रहने से बचें।**
- **पाठ्यपुस्तकों के अलावा कहानी, जीवनी, विज्ञान या इतिहास की किताबें पढ़ें।**
- **हर सप्ताह कुछ नया सीखें, जैसे चित्रकारी, संगीत, बागवानी, खाना बनाना या कोई खेल।**
- **सवाल पूछने में न झिझकें। सवाल करना कमजोरी नहीं, सीखने की शुरुआत है।**
- **कोई बात परेशान करे, चाहे स्कूल, दोस्त, इंटरनेट या परिवार से जुड़ी हो, तो उसे मन में न दबाएँ। किसी भरोसेमंद बड़े से कहें।**
- **हार से न डरें। हर प्रतियोगिता जीतना जरूरी नहीं, हार से सीखना ज्यादा जरूरी है।**
- **अपनी तुलना दूसरों से नहीं, कल के अपने प्रदर्शन से करें।**
- **रोज कुछ समय मोबाइल और टीवी के बिना परिवार के साथ बिताएँ। रिश्ते भी जीवन की बड़ी पूंजी हैं।**

माता-पिता के लिए

बच्चों को निर्देश देने से पहले उन्हें सुनिए। गलती होने पर तुरंत डाँटने के बजाय समझिए कि वह क्यों हुई। खुद हर समय मोबाइल में डूबे रहकर बच्चे से उसे छोड़ने की उम्मीद करना उचित नहीं; आदतें उदाहरण से सीखी जाती हैं। घर में कुछ स्पष्ट नियम बनाए जा सकते हैं: भोजन के समय मोबाइल नहीं, सोने से पहले स्क्रीन नहीं और रोज कुछ समय परिवार के साथ बातचीत या खेल।

बचपन बचाने की जिम्मेदारी किसकी?

यह केवल परिवार का दायित्व नहीं है। स्कूल, समाज, सरकार और मीडिया, सबकी भूमिका है। हमें ऐसे शहर और मोहल्ले चाहिए जहाँ सुरक्षित खेल के मैदान हों, स्कूलों में रचनात्मक गतिविधियों के लिए समय हो, माता-पिता अपनी अधूरी महत्वाकांक्षाओं का बोझ बच्चों पर न डालें और समाज बच्चों की जिज्ञासा को परेशानी नहीं, भविष्य की ताकत समझे। बच्चों को हर समय व्यस्त रखना जरूरी नहीं। कभी उन्हें खाली भी छोड़िए। शायद उसी खालीपन में वे कोई कहानी रच दें, चित्र बना दें या अपने भीतर छिपी प्रतिभा को पहचान लें।

एक छोटा-सा संकल्प

हर बच्चा अपने लिए ये पांच संकल्प ले सकता है: मैं रोज कुछ नया सीखूंगा; अपने शरीर को सक्रिय रखूंगा; इंटरनेट का समझदारी से उपयोग करूंगा; अपनी समस्या किसी भरोसेमंद व्यक्ति से कहूंगा; और अपनी तुलना किसी और से नहीं, अपने कल से करूंगा।

बचपन को तेज बनाने की नहीं, बेहतर बनाने की जरूरत है। बच्चों को तकनीक से दूर करना समाधान नहीं, उन्हें उसका विवेकपूर्ण उपयोग सिखाना समाधान है। पढ़ाई से बचाना ठीक नहीं, पर पढ़ाई को ही बचपन का पर्याय बना देना भी उचित नहीं।

बच्चे केवल भविष्य के नागरिक नहीं, आज के भी महत्वपूर्ण इंसान हैं। उनके पास सपने हैं, जिज्ञासा है, कल्पना है और दुनिया को देखने का अपना नजरिया है। हमारा काम उनका भविष्य तय करना नहीं, बल्कि उन्हें इतना सुरक्षित, स्वतंत्र और संवेदनशील वातावरण देना है कि वे अपना भविष्य खुद गढ़ सकें। क्योंकि जिस समाज का बचपन खुशहाल होता है, उसका भविष्य भी अधिक मजबूत होता है।

न कागज़ की नावें हैं, न बारिश में मस्ती,
न दोस्तों के संग शरारतें, न खेलों की बस्ती।
कभी मिट्टी में सपने थे, कभी आसमान में उड़ान,
अब उँगलियों के इशारों में सिमट गया जहान।
कहानियों की जगह वीडियो, संवादों की जगह स्क्रीन,
मासूम आँखों में बसती है एक आभासी दुनिया रंगीन।

जगदीश गौतम

19 नवंबर : इंदिरा गाँधी जयंती

श्रीमती इंदिरा गांधी और आपातकाल: अनकही कहानी

प्रो. प्रदीप माथुर

जून 1975 में तत्कालीन प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गांधी की सरकार द्वारा आपातकाल लागू किया जाना, स्वतंत्र भारत के लोकतांत्रिक शासन के 25 वर्ष से भी कम समय में, हमारे देश के समकालीन इतिहास का एक काला अध्याय है। यह असाधारण साहस, ईमानदारी और प्रतिबद्धता वाले एक सार्वजनिक जीवन के व्यक्तित्व के उज्ज्वल और निष्कलंक राजनीतिक जीवन पर लगा एक धब्बा भी है।

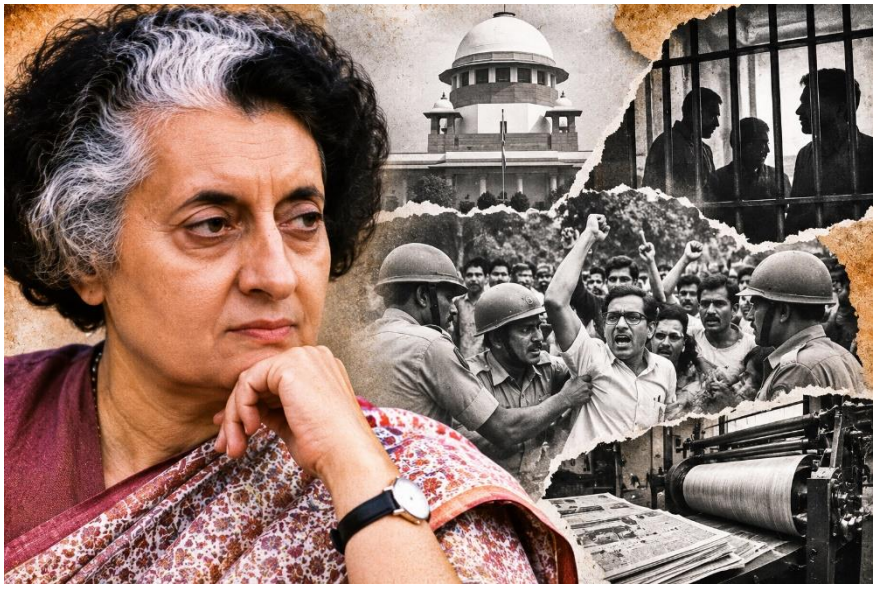

अल्पकालिक आपातकाल समाप्त होने के 50 वर्ष बाद भी यह मुद्दा राजनीतिक विमर्श में बना हुआ है। सत्तारूढ़ भाजपा-आरएसएस गठजोड़ इसका इस्तेमाल कांग्रेस और नेहरू-गांधी परिवार को बदनाम करने के लिए करता है, जबकि विपक्ष आरोप लगाता है कि वर्तमान राजनीतिक व्यवस्था में हालात आपातकाल के दौर से भी बदतर हैं। यहां तक कि आपातकाल के दौरान किए गए कुछ अच्छे कार्यों का हवाला देकर यह भी कहा जाता है कि आज स्थिति बहुत खराब है।

दोनों पक्षों के अपने राजनीतिक तर्क हैं, जिनके चलते आपातकाल आज भी समसामयिक राजनीतिक बहस का विषय बना हुआ है। लेकिन आपातकाल लागू करने के पीछे किन परिस्थितियों और कारकों की भूमिका थी, किसने पहल की और किन लोगों ने पर्दे के पीछे रहकर एक अनिच्छुक इंदिरा गांधी को आपातकाल लागू करने के लिए तैयार किया, ये सवाल अब भी रहस्य के आवरण में छिपे हैं।

श्रीमती इंदिरा गांधी की राजनीतिक यात्रा को करीब से देखने वाला कोई भी निष्पक्ष व्यक्ति इस बात की पुष्टि कर सकता है कि वह अत्यंत मानवीय, गरीबों और वंचितों की पीड़ा के प्रति संवेदनशील तथा अपने प्रिय देश के विकास के लिए प्रतिबद्ध थीं। अन्य सार्वजनिक जीवन के व्यक्तित्वों की तरह वह भी जानती थीं कि सत्ता में रहकर ही सर्वोत्तम जनसेवा की जा सकती है, लेकिन उन्हें सत्ता का भूखा या उनके व्यक्तित्व में तानाशाही प्रवृत्ति होने वाला बताना सच्चाई से बहुत दूर है।

यह सर्वविदित है कि इलाहाबाद की एक अदालत के फैसले ने श्रीमती इंदिरा गांधी के लोकसभा चुनाव को निरस्त कर दिया था और भविष्य में छह वर्ष तक

चुनाव लड़ने पर प्रतिबंध लगा दिया था। उस समय संवैधानिक संस्थाएँ गरिमा और स्वतंत्रता के साथ काम करती थीं। न तो न्यायाधीश की ईमानदारी पर किसी ने सवाल उठाया और न ही फैसले के पीछे किसी हेरफेर की आशंका जताई। लेकिन क्या सब कुछ निष्पक्ष और पारदर्शी था, यह सवाल कभी नहीं पूछा गया। तब किसी ने यह साबित करने की कोशिश भी नहीं की कि कुछ अदृश्य शक्तियाँ श्रीमती इंदिरा गांधी के खिलाफ काम कर रही थीं। हालांकि ऐसी शक्तियां हमेशा मौजूद रही हैं, लेकिन शायद उस समय 'डीप स्टेट' शब्द किसी ने सुना भी नहीं था।

आज पीछे मुड़कर देखने पर लगता है कि जो दिखाई दे रहा था, उसके पीछे बहुत कुछ और भी था। शायद किसी दिन कोई जांच समिति या शोधकर्ता इस पूरे घटनाक्रम की पड़ताल करना चाहे।

हालाँकि, कुछ बातें हमें आसानी से याद आ सकती हैं। आरोप मामूली और महत्वहीन था, जबकि आज उससे कहीं बड़ी अनियमितताओं को नजरअंदाज किया जा रहा है। न्यायाधीश ईमानदार थे, लेकिन वह रूढ़िवादी हिंदू परंपरावादी भी थे। क्या उन्हें आरएसएस, विश्व हिंदू परिषद जैसी कांग्रेस-विरोधी सांप्रदायिक हिंदू शक्तियों और उनके राजनीतिक संगठनों जनसंघ तथा रामराज्य परिषद ने प्रभावित किया था, यह कहना कठिन है। लेकिन इतना कहा जा सकता है कि रूढ़िवादी मध्यवर्ग के अधिकांश लोगों की तरह वह भी श्रीमती गांधी की प्रगतिशील आर्थिक और सामाजिक नीतियों के प्रति सहज नहीं थे।

दूसरी ओर, जयप्रकाश नारायण जैसे अग्रणी स्वतंत्रता सेनानी और सच्चे लोकतंत्रवादी थे, जिन्होंने दुर्भाग्यवश आपातकाल लागू होने की परिस्थितियों को उत्प्रेरित करने का काम किया और भारतीय राजनीति के सांप्रदायिकरण का रास्ता तैयार किया। आज हम जिसके दुष्परिणाम भुगत रहे हैं। यह वास्तव में दुर्भाग्यपूर्ण और इतिहास के साथ एक विडंबनापूर्ण अन्याय है।

जेपी, नेहरू के बहुत निकट थे और इंदिरा गांधी भी उनका अत्यंत सम्मान करती थीं। किसी तरह इंदिरा गांधी ने उनके अहं को चोट पहुंचाई, जिसके परिणामस्वरूप उनका 'संपूर्ण क्रांति' आंदोलन शुरू हुआ। इस आंदोलन में आरएसएस के कार्यकर्ताओं की बड़ी संख्या में घुसपैठ हो गई, जिससे मधु लिमये जैसे समाजवादी नेताओं को गहरी नाराजगी हुई।

इस बात के पर्याप्त कारण हैं कि आरएसएस के नेताओं ने जेपी और इंदिरा गांधी के बीच अविश्वास पैदा करने में भूमिका निभाई। एक समय जेपी इंदिरा गांधी को अपनी बेटी के समान मानते थे।

लेकिन आखिर आरएसएस उस समय इंदिरा गांधी के खिलाफ क्यों काम कर रहा था, जब पाकिस्तान को करारी शिकस्त देने और उसके विभाजन के बाद वह आरएसएस की नजर में हिंदुत्व की सबसे बड़ी प्रतीक बन चुकी थीं? आरएसएस-जनसंघ के प्रमुख नेता अटल बिहारी वाजपेयी ने सार्वजनिक रूप से उन्हें 'दुर्गा' तक कहा था।

उस समय आरएसएस या जनसंघ के सत्ता में आने की कोई संभावना नहीं थी। ऐसे में उनके श्रीमती इंदिरा गांधी के खिलाफ काम करने का कोई स्पष्ट कारण नजर नहीं आता। फिर उनके छिपे हुए दुश्मन कौन थे?

लेकिन आरएसएस के आम कार्यकर्ता वाजपेयी जी की तरह नहीं सोचते थे। रूढ़िवादी और अपरिष्कृत सनातन धर्म के अनुयायी होने के कारण वे बिहार के सामंती जमींदारों और भारत के पूंजीपति वर्ग के हितों के लिए काम करने हेतु प्रभावित और प्रेरित किए गए। ये वर्ग श्रीमती इंदिरा गांधी के समाजवादी कदमों से परेशान थे। राजाओं के प्रिवी पर्स समाप्त करना, बैंकों का राष्ट्रीयकरण, भूमि सुधार और सार्वजनिक वितरण प्रणाली जैसी नीतियां इन वर्गों के निहित स्वार्थों तथा पीढ़ियों से चली आ रही सुविधाओं और विशेषाधिकारों के लिए खतरा थीं, जिन्हें वे हर शासन में बनाए रखते आए थे।

उन्हें डर था कि बांग्लादेश युद्ध के बाद इंदिरा गांधी

की बढ़ी हुई लोकप्रियता और उनके गैर-अभिजात्य बेटे संजय के सहयोग से श्रीमती गांधी आम आदमी को सशक्त बनाने वाले ऐसे व्यापक कदम उठा सकती हैं, जो उनके हितों के विरुद्ध होंगे।

आरएसएस-भाजपा का मूलतः उच्च जाति, पूंजी समर्थक और आम आदमी के हितों के प्रति विरोधी चरित्र आज मोदी सरकार के शासन में पूरी तरह उजागर हो चुका है। यह सब किसी से छिपा नहीं है। दिलचस्प बात यह है कि पाकिस्तान के खिलाफ तमाम कठोर बयानबाजी के बावजूद मोदी और उनके वैचारिक परिवार ने कभी यह नहीं कहा कि पाकिस्तान की हार और उसके विघटन के पीछे श्रीमती इंदिरा गांधी की भूमिका थी।

श्रीमती इंदिरा गांधी को आपातकाल लागू करने के लिए उनके प्रिय पुत्र संजय गांधी ने प्रेरित किया था। संजय को इसके लिए तत्कालीन हरियाणा के मुख्यमंत्री चौधरी बंसीलाल ने उकसाया था। गुरुग्राम में मारुति परियोजना के लिए जमीन उपलब्ध कराने के कारण बंसीलाल संजय गांधी के बेहद करीब आ गए थे। अत्यंत महत्वाकांक्षी बंसीलाल के अपने हित इस बात में थे कि श्रीमती गांधी सत्ता में बनी रहें।

आमतौर पर यह माना जाता है कि आपातकाल लागू करने के संवैधानिक प्रावधानों की जानकारी और स्वीकृति दिलाने में श्रीमती इंदिरा गांधी के मित्र तथा पश्चिम बंगाल के मुख्यमंत्री सिद्धार्थ शंकर रे की भूमिका थी। लेकिन वास्तविकता यह है कि आपातकाल की योजना बनाने और उसका प्रस्ताव रखने वाले वह व्यक्ति नहीं थे। जब श्रीमती गांधी लगभग अपना मन बना चुकी थीं, तब अंतिम चरण में उनसे इस विषय पर सलाह ली गई थी।

25 जून 1975 भारतीय लोकतंत्र के इतिहास की वह तारीख है, जिसने देश की राजनीतिक दिशा और संवैधानिक व्यवस्था पर गहरी छाप छोड़ी। तत्कालीन प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गांधी द्वारा घोषित आपातकाल केवल सत्ता और राजनीति का संकट नहीं था, बल्कि नागरिक स्वतंत्रता, अभिव्यक्ति की आजादी, प्रेस की स्वायत्तता और लोकतांत्रिक संस्थाओं की भूमिका की भी एक कठिन परीक्षा थी। इस दौरान विपक्षी नेताओं और राजनीतिक कार्यकर्ताओं की गिरफ्तारियाँ हुईं, प्रेस पर सेंसरशिप लागू की गई और नागरिक अधिकारों पर व्यापक प्रतिबंध लगाए गए। सत्ता के केंद्रीकरण, प्रशासनिक दमन और जबरन नसबंदी जैसे विवादों ने इस दौर को और भी जटिल बना दिया। आखिर किन राजनीतिक परिस्थितियों, अदालती फैसलों और सत्ता संबंधी आशंकाओं ने इंदिरा गांधी को यह कठोर निर्णय लेने के लिए प्रेरित किया? आपातकाल के दौरान पर्दे के पीछे क्या कुछ घटित हुआ, किन लोगों ने प्रतिरोध की आवाज बुलंद की और लोकतंत्र की बहाली के लिए देश ने कैसी कीमत चुकाई? यह सिर्फ इंदिरा गांधी के राजनीतिक जीवन का एक विवादास्पद अध्याय नहीं, बल्कि भारतीय लोकतंत्र की ताकत, कमजोरियों और नागरिक अधिकारों के महत्व को समझने वाली एक ऐसी अनकही कहानी है, जिसके सबक आज भी उतने ही प्रासंगिक हैं।

आपातकाल लागू करने के लिए संविधान में प्रावधान मौजूद होने और उसका इस्तेमाल किए जा सकने का सुझाव देने वाले वास्तविक सूत्रधार हरियाणा के तत्कालीन राज्यपाल बी.एन. चक्रवर्ती थे। बंसीलाल ने उनसे बातचीत की और फिर बी.एन. चक्रवर्ती तथा संजय गांधी के बीच संवाद या मुलाकात की व्यवस्था की। इसके बाद संजय ने अपनी मां को इसकी जानकारी दी और उन्हें आपातकाल लागू करने के लिए राजी कर लिया। राजनीतिक रूप से महत्वाकांक्षी और सत्ता के गलियारों में प्रवेश की कोशिश कर रहे उनके करीबी रिश्तेदार अरुण नेहरू ने भी उन्हें समझाने में भूमिका निभाई।

इसके बाद जो हुआ, वह इतिहास है।

(प्रो. प्रदीप माथुर वरिष्ठ पत्रकार एवं मीडिया विशेषज्ञ हैं। वह मीडिया मैप के संपादक और सामाजिक कार्यों में सक्रिय संस्था एमबीकेएम फाउंडेशन के अध्यक्ष हैं।)

पुस्तक समीक्षा

सोनिया गांधी की आत्मकथा : प्रेम, अपनापन और राजनीति का सफर

डॉ. मुजफ्फर हुसैन ग़ज़ाली



सोनिया गांधी की राजनीति की आत्मकथा बिलॉन्गिंग: ए जर्नी ऑफ लव केवल एक राजनीतिक नेता का स्मरण नहीं, बल्कि प्रेम, भ्रमण, सांस्कृतिक पहचान, पारिवारिक जुड़ाव, व्यक्तिगत यात्राएँ और धार्मिक कहानियां हैं। इटली में जन्मी सोनिया इंग्लैंड में पढ़ाई के दौरान राजीव गांधी के प्रेम में पड़ीं, विवाह के बाद भारत आए, नेहरू-गांधी परिवार का हिस्सा बने और अंततः देश की अंतिम राजनीतिक स्थिति में शामिल हो गए।

पुस्तक का शीर्षक **'बिलॉन्गिंग'** (अपनापन) उनके जीवन के केंद्रीय भाव को अभिव्यक्त करता है। भारत उनके लिए एकमात्र विवाह के बाद बसने वाला देश नहीं रहा, बल्कि धीरे-धीरे उनका जीवन, स्मृतियाँ और प्रचलन केंद्र बन गया।

प्रारंभिक अध्यायों में वह इटली में अपने बचपन, परिवार और शिक्षा का वर्णन करती है। उनके पिता स्टेफ़ानो माइनो के प्रिय और सिद्धांतों पर दृढ़ रहने वाले व्यक्ति थे। इसके बाद कैंब्रिज में राजीव गांधी से मुलाकात, प्रेम और 1968 में विवाह के बाद भारत आने का प्रसंग है। एक युवा यूरोपीय महिला ने भारतीय संस्कृति, भाषा और संप्रदाय को अपनाना आसान नहीं था, लेकिन समय के साथ उन्होंने भारत को अपना बना लिया।

सोनिया गांधी की स्मृति में इंदिरा गांधी के साथ उनका विशेष स्थान है। वह उन्हें सिर्फ प्रधानमंत्री के रूप में नहीं, बल्कि मां और सास के रूप में याद करते हैं। पुस्तक में इंदिरा गांधी के घरेलू जीवन, पारिवारिक संप्रदाय और व्यक्तिगत स्वभाव की छापें हैं, जो राजनीतिक इतिहास के सामान्य सिद्धांतों में बार-बार छूट दी जाती है।

उनके जीवन की त्रासदियों का भी पुस्तक में मार्मिक वर्णन है। जन्म के कुछ समय बाद पहले बच्चे की मृत्यु, इंदिरा गांधी की हत्या और 1991 में राजीव गांधी की हत्या ने उनके जीवन की दिशा बदल दी। सोनियाती लिखती हैं कि भारत वह देश था, जहां वह पत्नी, मां और अंततः विधवा बनीं।

राजीव गांधी की हत्या के बाद वह अपने बच्चों के साथ इटली लौटकर सुरक्षित और शांतिपूर्ण जीवन व्यतीत कर रहे थे, लेकिन उन्होंने भारत में रहने और शांति का सामना करने का निर्णय लिया। 1998 में कांग्रेस अध्यक्ष पद पर रहते हुए उनके राजनीतिक जीवन में उतार-चढ़ाव आया। विदेशी मूल के मुद्दे पर विरोध और आलोचना के बावजूद वह देश की सबसे बड़ी राजनीतिक पार्टी का नेतृत्व कर रहे हैं।

2004 के आम चुनाव में कांग्रेस के नेतृत्व वाले संयुक्त प्रगतिशील गठबंधन (यूपीए) की जीत हुई और उनके प्रधानमंत्री बनने की संभावना पैदा हुई। सोनिया के मुताबिक, राहुल और प्रियंका इस विचार के विरोध में थे, क्योंकि दादी और पिता की हत्या के बाद उन्हें मां की सुरक्षा की चिंता थी। गठबंधन के सहयोगियों के आग्रह पर उन्होंने जिम्मेदारी स्वीकार करने की तैयारी शुरू कर दी, लेकिन बाद में उन्होंने डॉ. से इनकार कर दिया। इस पद के लिए

मनमोहन सिंह का नाम रखा गया। प्रधानमंत्री न बने के बावजूद कांग्रेस और यूपीए की राजनीति में अपना प्रभाव बना रहे हैं।

किताब में कांग्रेस के वरिष्ठ नेता प्रणब मुखर्जी की प्रधानमंत्री बने की बयानबाजी का भी जिक्र है। सोनिया को याद है कि 2010 में बातचीत के दौरान मुखर्जी ने ब्रेकअप पर काम करते हुए कहा था कि शायद टॉप लीडरशिप में बदलाव का समय आ गया है। उन्होंने इसे प्रधानमंत्री बनने की अपनी लंबे समय से चली आ रही इच्छा का संकेत माना है। इस खुलासे पर राजनीतिक हलकों में चर्चा हुई। उनकी बेटी शर्मिष्ठा मुखर्जी ने पिता की विरासत का बचाव करते हुए कहा कि अनुभवी राजनेताओं के देश के सर्वोच्च कार्यकारी पद की विरासत बरकरार है। 2012 में प्रणब मुखर्जी कांग्रेस के राष्ट्रपति पद के उम्मीदवार बने और भारत के राष्ट्रपति बने।

बाबरी विध्वंस मस्जिद का एक महत्वपूर्ण और प्रेरक विषय है। सोनिया ने लिखा है कि 6 दिसंबर, 1992 को टेलीविजन पर मस्जिद के विध्वंस के दृश्य को देखते हुए उन्होंने फूट-फूट कर रो दी थी। उनके अनुसार, इस घटना ने भारत के नासिक संस्थानों को गहराई से छुआ। उनकी पीड़ा देश की बहुसंख्यक संस्कृति और गांधी-नेहरू की आस्था के प्रति जुड़ाव को खोना है।

लेकिन यह प्रसंग कांग्रेस की भूमिका से जुड़ा ऐतिहासिक प्रश्न भी उठाता है। बाबरी मस्जिद के शिलालेख 1 फरवरी, 1986 को खोले गए थे, जब राजीव गांधी प्रधानमंत्री थे। इस निर्णय में कांग्रेस सरकार की भूमिका, हिंदुत्व की राजनीति का दबाव और हितों का प्रभाव विवाद का विषय रहे हैं। कुछ मान्यताओं का मानना है कि शाहबानो विवाद के बाद कांग्रेस ने हिंदू धर्म का नारा देने की कोशिश की और राम जन्मभूमि आंदोलन की निकटता तक पहुंच गई। राजीव गांधी ने 1989 के चुनाव अभियान में अयोध्या से रामराज्य की अवधारणा का उल्लेख किया था। इस पृष्ठभूमि में कांग्रेस के समर्थकों की आलोचनात्मक समीक्षा जरूरी है।

सोनिया गांधी का कहना है कि शाहबानो विवाद को लेकर उन्होंने राजीव गांधी से पूछा था कि वह मुस्लिम महिलाओं के हितों की बलि क्यों दे रहे हैं। राजीव ने उन्हें फिल्मों की कोशिश की कि वह महिलाओं को न्याय दिलाने और मुस्लिम व्यक्तिगत कानून की व्यवस्था बनाए रखने के बीच संतुलन बनाए रखने की कोशिश कर रहे हैं। बाबरी विध्वंस मस्जिद पर सोनिया की पीड़ा पर विचार करने का अवसर भी दिया गया है।

2002 के गुजरात राजपुत को याद करते हुए सोनिया ने लिखा था कि टेलीविजन पर हिंसा के दृश्य देखकर पूरा देश बर्बाद हो गया था। उस समय वह लोकसभा में नामांकन के नेता थे। उन्होंने फिलाहल के राहत शिविरों का दौरा किया और अनुयायियों से मुलाकात की। उनके अनुसार, हिंसा से प्रभावित लोगों में भारी बहुमत बहुमत का था। नेताओं ने कांग्रेस की सहायता अपील के बावजूद उन्हें राज्य सरकार की प्रभावी कार्रवाई में विफल रही।

सोनिया गांधी के विचार में भारत ऐसा देश होना चाहिए, जहां हर नागरिक धर्म की गरिमा और आत्मसम्मान के साथ रह सके और उसे अपनी राष्ट्रभक्ति साबित करने के लिए मजबूर किया जाए। नागरिक समानता, धार्मिक स्वतंत्रता और मानवता गरिमा लोकतंत्र के दर्शन सिद्धांत हैं। समानता और बहुसंख्यकवाद पर उनके विचारों के राजनीतिक और नैतिक पक्ष मजबूत होते हैं।

हालाँकि, पुस्तक में कुछ ऐसे विषय थे जिन पर अधिक विस्तार और आत्मालोचन की तीव्रता थी। इनमें से अंतिम, 1984 की सिख विरोधी हिंसा, बोफोर्स विवाद और कांग्रेस संगठन का पतन शामिल हैं। इन घटनाओं की गहन समीक्षा, स्मारकों के ऐतिहासिक महत्व को बढ़ाया जा सकता था।

किताब में यह भी दावा किया गया है कि राजीव

गांधी नौटंकी के विरोधी थे। एक अन्य प्रसंग में ऑपरेशन ब्लू स्टार के बाद गोल्डन टेम्पल की तस्वीरें देखकर इंदिरा गांधी के रोने का वर्णन है। सोनिया इसे विनाश और जनहानी का दुःख सहयोगी हैं। ऑपरेशन ब्लू स्टार को लेकर पॉलिटिकल रिवर और एल.के. इंदिरागांधी और उनकी पार्टी द्वारा दबाव के विद्वानों के ऐतिहासिक साक्ष्य के आधार पर जांच जरूरी है; केवल राजनीतिक समझौते को स्थापित तथ्य पर विचार नहीं किया जा सकता है।

पुनरावलोकन में मेनका गांधी पर यह भी आरोप लगाया गया कि उन्होंने इस दौरान संजय गांधी की ज्यादतियों को बढ़ावा दिया। किताब पर भाजपा की टिप्पणी में नारे को लेकर सवाल उठाए गए हैं। वहीं, वर्तमान सरकार के आलोचक उनकी कार्यशैली में लगभग कुछ तानाशाही प्रवृत्तियों की दृष्टि रखते हैं। वे होने वाले राजनीतिक शौक़ीन लोगों में से एक हैं, राहत मिलने की इच्छा पर सवाल। ये आरोप समसामयिक राजनीतिक बहस का हिस्सा बने हुए हैं।

राहुल गांधी के सरकारी आवास को वापस लेने, उनके संसदीय संस्थानों के निलंबन और जांच व कानूनी मामलों में बार-बार तलब की भी चर्चा हो रही है। पुलिस कार्रवाई के दौरान प्रियंका गांधी की विचारधारा को राजनीतिक प्रदर्शनों का सामना करना पड़ा। दोनों नेताओं ने पुलिस द्वारा रोके जाने और धक्का-मुक्की की स्थिति पर तीखी प्रतिक्रिया व्यक्त की। जंतर-मंतर पर प्रदर्शन के दौरान महिला दलालों और अन्य प्रदर्शनकारियों ने अत्यधिक पुलिस बल, नशे-धमकाने और अपमान करने के आरोप लगाए। पेलेट गन से जुड़े दस्तावेज़ और कथित शारीरिक संतुलन की ख़बरों ने नागरिक स्वतंत्रता, फिलिस्तीन विरोध के अधिकार और पुलिस गठबंधन को लेकर गंभीर सवाल उठाए।

आलोचकों का कहना है कि इन स्वास्थ्य सुविधाओं पर सरकार की प्रतिक्रिया नहीं चल रही है और प्रधानमंत्री और जासूस भी काफी हद तक मौन हैं। राजनीतिक तर्क से सहमति हो या असहमति, लोकतंत्र में इन प्रस्तावों की गंभीर भिन्नता आवश्यक है।

पब्लिशिंग हाउस की बिमारियां जो रही हैं, बिलॉन्गिंग: ए जर्नी ऑफ लव ने राजनीतिक और वैज्ञानिक जगत में गहरी रुचि पैदा की है। हार्पर कॉलिन्स इंडिया के अनुसार, पहले सप्ताह में दो लाख से अधिक की पुस्तक की बिक्री और इलेक्ट्रोनिक पुस्तक के कलाकारों ने पुस्तक की विचित्र भीड़ की जानकारी दी। यह प्रतिक्रिया बताती है कि सम्प्रेषण केवल एक राजनीतिक पुस्तक नहीं है, बल्कि भारत के समकालीन सार्वजनिक चर्चा का महत्वपूर्ण विषय बन गया

सोनिया गांधी पेशेवर पत्रकार या वैज्ञानिक लेखिका नहीं हैं, फिर भी उन्होंने अपने संस्मरणों को काफी स्पष्टता और विश्वसनीयता से प्रस्तुत किया है। वह कहती हैं कि प्रेम कैसा लगता है, रिश्ते की पहचान बदलती रहती है और पहचान सामूहिक जिम्मेदारी के रूप में सामने आती है। यही क्रम यह पुस्तक विशिष्ट आकर्षण देती है।

हार्पर कॉलिन्स इंडिया ने पुस्तक का अंग्रेजी संस्करण 10 नवंबर, 2026 को प्रकाशित किया। यह 544 पासपोर्ट की पुस्तक है। इसका पहला प्रकाशन पेंगुइन रैंडम हाउस इंडिया से होने की उम्मीद थी, लेकिन हिंदुस्तान टाइम्स और अन्य समाचार निर्माताओं की रिपोर्ट के अनुसार, प्रधान मंत्री नरेंद्र मोदी, राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ (आरएसएस) और भारतीय क्षेत्र में चीनी सशस्त्र बलों से जुड़े संदर्भों में प्रस्तावित मित्रता परिवर्तन और शेयर बाजार को लेकर सहमति टूट गई। बताया गया कि सोनिया गांधी परिवर्तनों को स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं थीं। हालाँकि, पेंगुइन रैंडम हाउस इंडिया ने इस धारणा को खंडित किया कि प्रकाशन के निर्णय में केवल लेखिका के विभिन्न बदलावों को अस्वीकार करने का कारण लिया गया था।

स्मृति व्याख्यान

"आध्यात्मिकता, प्राकृतिक चिकित्सा और योग के संगम से निरोग जीवन का संदेश"

चंद्र कुमार श्रीवास्तव



क्या दवाओं पर निर्भर हुए बिना भी स्वस्थ जीवन संभव है? इसी महत्वपूर्ण

सवाल को केंद्र में रखकर एम बी के एम फाउंडेशन ने श्री मनमोहन स्वरूप की पावन स्मृति में सेक्टर-6 स्थित एवं ई ए ऑडिटोरियम में "शून्य औषधि एवं रोगमुक्त जीवन कैसे जिएँ " विषय पर एक विशेष व्याख्यान सत्र आयोजित किया। ऋषिकेश से आई जगद्गुरुत्तम सेवा समिति की विशेषज्ञ टीम ने आध्यात्मिकता, प्राकृतिक चिकित्सा, प्राणशक्ति, योग, आहार और उपवास के माध्यम से स्वस्थ जीवन के सूत्र साझा किए।

क्षेत्रीय सांसद एवं पूर्व केंद्रीय मंत्री डॉ. महेश शर्मा ने आयोजन की सफलता के लिए शुभकामनाएँ प्रेषित कीं। कार्यक्रम का शुभारंभ विशिष्ट अतिथि एवं पूर्व आईएएस अधिकारी श्री देवदत्त शर्मा के उद्बोधन से हुआ। उन्होंने इस पहल को नोएडा में प्राकृतिक चिकित्सा विज्ञान के प्रति जनजागरूकता की दिशा में एक महत्वपूर्ण और पूर्णतः निःशुल्क प्रयास बताया। उन्होंने कहा कि यह आयोजन केवल स्वास्थ्य चर्चा नहीं, बल्कि आत्मा, मन और शरीर के समग्र कल्याण की अवधारणा को सामने लाने वाला आध्यात्मिक एवं प्राकृतिक चिकित्सा का अनूठा संगम है।

एम बी के एम फाउंडेशन के संस्थापक चेयरमैन एवं मीडिया गुरु प्रो. प्रदीप माथुर ने अतिथियों का स्वागत करते हुए कहा कि फाउंडेशन का उद्देश्य

केवल सामाजिक सेवा तक सीमित नहीं, बल्कि जनभागीदारी से समाज में सकारात्मक परिवर्तन लाना है। उन्होंने दवाओं पर बढ़ती निर्भरता और इलाज के भारी आर्थिक बोझ की ओर ध्यान आकर्षित करते हुए कहा कि समय आ गया है कि समाज अपनी पारंपरिक स्वास्थ्य चेतना, संतुलित खान-पान और अनुशासित जीवनशैली के महत्व को फिर से पहचाने। फाउंडेशन का संकल्प है कि **"स्वस्थ समाज के निर्माण में प्रत्येक व्यक्ति सहभागी बने।"**

ऋषिकेश से आमंत्रित पंचम मूल जगद्गुरु श्री कृपालु जी महाराज के अनुयायी आचार्य श्री शिव कुमार, डॉ. संदीप चौहान, योगाचार्य आरती बहन, शिखा बहन एवं रेवती बहन ने विभिन्न विषयों पर व्यावहारिक एवं ज्ञानवर्धक विचार प्रस्तुत किए।

आचार्य श्री शिव कुमार ने आध्यात्मिक चेतना और शारीरिक स्वास्थ्य के गहरे संबंध को स्पष्ट करते हुए प्राणशक्ति के महत्व पर प्रकाश डाला। उन्होंने गलत खान-पान तथा चाय, कॉफी एवं दूध के अत्यधिक सेवन से जुड़ी संभावित स्वास्थ्य समस्याओं के प्रति सचेत किया।

योगाचार्य आरती बहन ने प्राकृतिक चिकित्सा के इतिहास, मूल सिद्धांतों और स्वस्थ जीवनशैली में योग और उसकी उपयोगिता की जानकारी दी। शिखा बहन ने वास्तविक स्वस्थता की अवधारणा समझाते हुए बताया कि स्वस्थ शरीर के साथ स्वस्थ मन भी समग्र स्वास्थ्य का अनिवार्य आधार है।

एक्यूप्रेशर विशेषज्ञ डॉ. संदीप चौहान ने रोगों के कारणों, बचाव, एक्यूप्रेशर तथा प्राकृतिक चिकित्सा की भूमिका पर विस्तार से चर्चा की। उन्होंने उचित आहार, खाद्य पदार्थों के सही संयोजन और संतुलित खान-पान को स्वस्थ जीवन का महत्वपूर्ण आधार बताया।

रेवती बहन ने उपवास के आध्यात्मिक एवं वैज्ञानिक पक्ष को प्रस्तुत करते हुए उचित मार्गदर्शन और सावधानियों के साथ इसके महत्व को समझाया। उनके भावपूर्ण भजनों ने पूरे सभागार को भक्तिरस से सराबोर कर दिया।

नेपाल से आमंत्रित मानसिक स्वास्थ्य विशेषज्ञ आचार्य राज कुमार त्यागी ने लगभग तीन दशकों के अनुभव साझा करते हुए मानसिक स्वास्थ्य को शारीरिक स्वास्थ्य का महत्वपूर्ण आधार बताया। उन्होंने नियमित ध्यान-साधना, मानसिक संतुलन और सकारात्मक चिंतन को स्वस्थ जीवन के लिए आवश्यक बताया।

कार्यक्रम में उपस्थित लोगों की जिज्ञासाओं का विशेषज्ञों ने प्रश्नोत्तर सत्र के माध्यम से समाधान किया। समापन भगवान श्रीकृष्ण, राधारानी एवं जगद्गुरुत्तम श्री कृपालु जी महाराज की आरती के साथ भक्तिमय वातावरण में हुआ।

कार्यक्रम में श्री आर.एस. अत्रोले, राजीव कुमार, डॉ. अविनाश सिंह, एडवोकेट एम.ए. मंसूरी, तनुश्री एवं एडवोकेट संजय माथुर सहित फाउंडेशन के अनेक सदस्यों ने अतिथियों का स्वागत एवं आयोजन में सक्रिय सहयोग किया। तकनीकी व्यवस्था में श्री सुमित का विशेष योगदान रहा। कार्यक्रम का सफल संचालन सर्वोच्च न्यायालय के अधिवक्ता चन्द्र कुमार श्रीवास्तव ने किया।

इस आयोजन ने एक महत्वपूर्ण संदेश दिया कि स्वास्थ्य केवल बीमारी का अभाव नहीं, बल्कि संतुलित आहार, संयमित दिनचर्या, मानसिक शांति, आध्यात्मिक चेतना और प्रकृति के अनुरूप जीवन जीने की कला है। एम बी के एम फाउंडेशन की यह पहल समाज को उपचार के साथ-साथ रोगों से बचाव और स्वास्थ्य के प्रति स्वयं जिम्मेदार बनने की प्रेरणा देने की दिशा में उल्लेखनीय कदम है।



पंजाब के 'हैनिमैन' डॉ. मोहन सिंह: एक प्रेरक गाथा

प्रो. अविनाश सिंह



सन् 1920 में एक प्रतिष्ठित एलोपैथिक चिकित्सक ने हेडमास्टर मोहन सिंह को बताया कि उन्हें कार्बंकल (गंभीर फोड़ा) है और बचने की उम्मीद बहुत कम है। सात वर्ष बाद, 1927 में, मोहन सिंह पूरी तरह स्वस्थ होकर उसी चिकित्सक को यह बताने पहुंचे कि होम्योपैथी ने उन्हें ठीक कर दिया है। तब तक वह चिकित्सक दुनिया छोड़ चुका था।

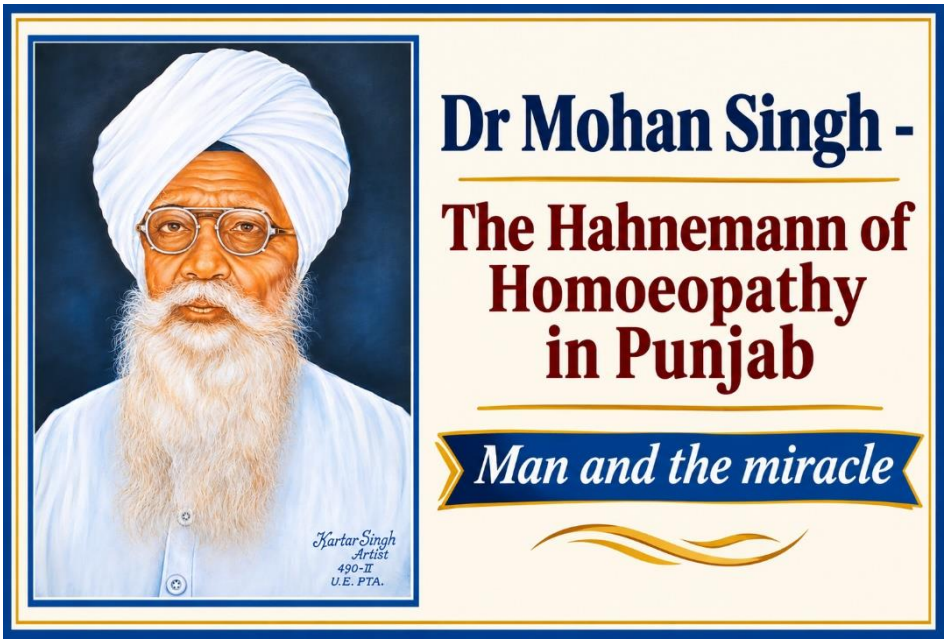

यह केवल एक रोगी के ठीक होने की कहानी नहीं है। यह उस विश्वास और समर्पण की कथा है, जिसने मोहन सिंह को आगे चलकर पंजाब में होम्योपैथी का प्रमुख स्तंभ बना दिया।

शिक्षक और राष्ट्रप्रेमी

मोहन सिंह पेशे से शिक्षाविद् थे। 1910 के आसपास उन्होंने अविभाजित पंजाब के हरिपुर हजारा, बन्नू और पटियाला के खालसा स्कूलों में अंग्रेजी और गणित पढ़ाया और प्रधानाध्यापक भी रहे। वे सरकारी नौकरी से दूर रहे और शिक्षा के साथ देश की स्वतंत्रता के प्रति भी समर्पित थे। उनके पिता दीवान सुंदर सिंह पटियाला के महाराजा भूपिंदर सिंह के शासनकाल में वित्त मंत्री थे।

बीमारी से होम्योपैथी तक

कार्बंकल का कोई प्रभावी इलाज एलोपैथी में न मिलने पर उन्हें लाहौर के प्रसिद्ध होम्योपैथ डॉ. हमीद लहोरिया के पास ले जाया गया, जिन्हें पंजाब में 'बाबा-ए-होम्योपैथी' कहा जाता था। जर्मनी जाने की तैयारी में व्यस्त डॉ. लहोरिया ने एक दवा सुझाई और आगे के उपचार के लिए उन्हें कलकत्ता (अब कोलकाता) के डॉ. डब्ल्यू. यूनान के पास भेज दिया। ब्रिटेन से एमबीसीएम की योग्यता प्राप्त डॉ. यूनान मूलतः एलोपैथ थे, पर महान होम्योपैथ डॉ. बी.एन. बनर्जी से प्रभावित होकर होम्योपैथी अपना चुके थे।

मोहन सिंह अपने मित्र पंडित मोतीलाल नेहरू के साथ कलकत्ता पहुंचे। नेहरू स्वयं साइनस के इलाज के लिए डॉ. यूनान के पास गए थे। उन्हें 36 रुपये की परामर्श फीस कुछ अधिक लगी, पर उपचार से लाभ हुआ।

पटियाला लौटकर मोहन सिंह ने जब पत्र में फोड़े बढ़ने की शिकायत की, तो डॉ. यूनान ने जवाब दिया कि उपचार के दौरान लक्षणों का बढ़ना इस बात का

संकेत हो सकता है कि दवा असर कर रही है। उन्होंने दवाएँ जारी रखने को कहा।

इस बीच उनका आकर्षण इस पद्धति की ओर गहराता गया। उनके ससुर हकीम हरनाम सिंह अमृतसर के यूनानी चिकित्सा जगत की बड़ी हस्ती थे, जिनके माध्यम से उनका परिचय अलग-अलग चिकित्सा पद्धतियों से हुआ। 1921-22 में दोनों मित्र फिर कलकत्ता गए और होम्योपैथी की पुस्तकें व दवाएँ साथ लाए। जर्मन चिकित्सक डॉ. सैमुअल हैनिमैन द्वारा विकसित इस पद्धति में मोहन सिंह का विश्वास अब दृढ़ हो चुका था।

पूरी तरह स्वस्थ होने में सात वर्ष लगे, पर इस दौरान वे पढ़ाते रहे और साथ ही होम्योपैथी का अध्ययन व उपचार भी शुरू कर दिया। 1925 के बाद उनका जीवन लगभग पूरी तरह इस पद्धति के प्रचार-प्रसार और सेवा को समर्पित हो गया।

शिष्य और 'पंजाब के हैनिमैन'

उनकी ख्याति पंजाब से बाहर तक फैली। उन्होंने अनेक चिकित्सकों को प्रशिक्षित किया। उनके प्रमुख शिष्यों में डॉ. जुगल किशोर शामिल हैं, जिन्होंने होम्योपैथिक दवाओं की प्रसिद्ध 'किशोर कार्ड्स' रिपर्टरी विकसित की। इसके आधारभूत कार्य का श्रेय मोहन सिंह के मार्गदर्शन को दिया जाता है। डॉ. एच.आर. चितकारा, डॉ. गुरनाम सिंह, डॉ. मोहिंदर सिंह चुघ, डॉ. एस.एस. सोहिल और डॉ. हरमीत सिंह भी उनके शिष्यों में गिने जाते हैं।

देश के तत्कालीन सबसे बड़े राज्यों में शामिल पंजाब में इस पद्धति की मजबूत नींव रखने के कारण उन्हें 'पंजाब का हैनिमैन' कहा जाने लगा। 1930 के दशक में वे अखिल भारतीय होम्योपैथी एसोसिएशन (AIHA) के अध्यक्ष चुने गए। स्वतंत्रता के बाद भी दो दशकों से अधिक समय तक वे पंजाब में होम्योपैथी के संगठन और विस्तार का नेतृत्व करते रहे। 1979 में उनके निधन तक यह समर्पण बना रहा।

डिग्री ठुकराई, दंड सहा

शैक्षणिक रूप से भी वे अग्रणी थे। 1940 के दशक में भारत छोड़ो आंदोलन के समय तक वे तीन एम.ए. डिग्रियाँ हासिल कर चुके थे और पीएचडी के लिए भी योग्य घोषित हो गए थे। पर उन्होंने यह उपाधि किसी ब्रिटिश अधिकारी के हाथों लेने से इनकार कर दिया, और इसके लिए उन्हें दंडित किया गया।

सेवा ही असली पहचान

उनकी महानता केवल विद्वता या संगठनात्मक योगदान में नहीं थी। अपने गाँव चौड़ा के लोगों, पड़ोसियों और गरीब जरूरतमंदों से वे इलाज के लिए कभी पैसे नहीं लेते थे। उनके लिए चिकित्सा पेशा नहीं, मानव सेवा का माध्यम थी।

जीवित विरासत

पटियाला के पुराने कोतवाली चौक में उनके द्वारा शुरू किया गया क्लीनिक आज उनकी माता की स्मृति में 'गंगा देवी होम्योपैथिक अस्पताल' के नाम से चल रहा है, जिसका संचालन डॉ. हरमीत सिंह और डॉ. तपनूर सिंह करते हैं।

परिवार की अगली पीढ़ियों ने भी परंपरा निभाई है। उनके वंशजों में सात सदस्य पूर्णकालिक रूप से होम्योपैथी का अभ्यास कर रहे हैं। इनमें डॉ. अमितेश्वर कौर कनाडा के सरे (ब्रिटिश कोलंबिया) में और डॉ. मनप्रीत सिंह पटियाला में सेवाएँ दे रहे हैं। डॉ. सोहिल और डॉ. मदनजीत सिंह अमृतसर में, डॉ. स्वर्ण कौर फरीदकोट में तथा डॉ. मेहर सिंह नई दिल्ली में कार्यरत रहे हैं।

तीसरी पीढ़ी के एकजोत सिंह ने हाल ही में एमबीबीएस में प्रवेश का पक्का अवसर छोड़कर होम्योपैथी को करियर बनाने का फैसला किया, जो इस बात का संकेत है कि यह विरासत नई पीढ़ी को भी प्रेरित कर रही है।मोहन सिंह की सच्ची विरासत उनकी डिग्रियाँ या पद नहीं, बल्कि वे हजारों लोग हैं जिन्हें उन्होंने उपचार, प्रशिक्षण और सेवा के माध्यम से नई उम्मीद दी।

(लेखक हिंदुस्तान टाइम्स के पूर्व विशेष संवाददाता और शिक्षाविद् हैं।)

यह रैंकिंग चुभनी चाहिए

अमिताभ श्रीवास्तव



भारत में अधिकांश पत्रकारों को शायद यह भी याद न हो कि पिछले 12 वर्षों में देश का सूचना एवं प्रसारण मंत्री कौन रहा है, लेकिन वे राष्ट्रीय प्रेस दिवस ऐसे मनाते हैं, मानो उनका पूरा अस्तित्व इसी पर निर्भर हो।



देश में 16 नवंबर को राष्ट्रीय प्रेस दिवस मनाया जाता है, क्योंकि इसी दिन 1966 में भारतीय प्रेस परिषद (प्रेस काउंसिल ऑफ इंडिया) की स्थापना हुई थी। इसका उद्देश्य 'प्रेस की स्वतंत्रता' की रक्षा करना और 'उच्च नैतिक मानदंडों' को बनाए रखना था। गूगल से पूछने पर एआई यही जानकारी देता है।

लेकिन हमेशा की तरह इस जानकारी के साथ एक चेतावनी भी जुड़ी होती है– 'एआई गलतियां कर सकता है, इसलिए जवाबों की दोबारा जांच कर लें।

किससे?

अरे हां, पीआईबी (पत्र सूचना कार्यालय) से। मैं यह कैसे भूल गया!

1966 में स्कूल की पत्रिका के संपादक के रूप में अपनी यात्रा शुरू करने वाले और 2026 तक पांच दशक से अधिक समय पत्रकारिता में बिता चुके मेरे जैसे लोग अच्छी तरह जानते हैं कि इन वर्षों में

भारतीय प्रेस परिषद कितनी निष्प्रभावी और नख-दंत विहीन संस्था बनकर रह गई है।

इसमें कोई आश्चर्य नहीं कि आज रिपोर्टर्स विदाउट बॉर्डर्स द्वारा जारी विश्व प्रेस स्वतंत्रता सूचकांक में 180 देशों में भारत का स्थान 157वां है। हम नेपाल (87), मालदीव (108), श्रीलंका (134), भूटान (150), बांग्लादेश (152) और यहां तक कि अपने मित्र पड़ोसी पाकिस्तान (153) से भी काफी पीछे हैं।

जब से भारत में बड़े कारोबारी घरानों ने मीडिया संस्थानों का प्रत्यक्ष स्वामित्व संभालना शुरू किया है, तब से पत्रकारिता की अवधारणा में भारी बदलाव आना स्वाभाविक ही है।

इस वर्ष राष्ट्रीय प्रेस दिवस की थीम भी इस बदलाव को स्पष्ट रूप से सामने रखती है – पत्रकारिता: लोकलुभावन या जिम्मेदार' ।

हालांकि हम सभी इसका जवाब जानते हैं, लेकिन क्या हम वास्तव में इसे लेकर चिंतित हैं?

सचमुच?

आजकल यह फैशन बन गया है कि लोग खुलेआम कहते हैं, 'मैंने पिछले दस वर्षों से टीवी पर समाचार नहीं देखे हैं।'

लेकिन क्या किसी पत्रकार ने, जो अपने पेशे के प्रति वास्तव में गंभीर हो, कभी यह स्वीकार किया है कि उसके घर में टीवी ही नहीं है, बल्कि सच तो यह है कि कई-कई टीवी सेट हैं?

तो फिर वे देखते क्या हैं, अगर समाचार नहीं देखते?

क्रिकेट मैच, रियलिटी शो या ओटीटी सीरीज?

और समाचार न देखकर आंखें बंद कर लेने से पक्षपातपूर्ण और ब्रांडेड खबरों की समस्या का समाधान

कैसे हो सकता है?

क्या पत्रकार अपने उस पेशे के प्रति इतने लापरवाह हो सकते हैं, जिससे दशकों से उनकी रोजी-रोटी चल रही है और जिस पर वे गर्व भी जताते हैं?

हाल के कुछ लाइव कार्यक्रमों में मैंने राजदीप सरदेसाई और विनोद शर्मा जैसे अनेक वरिष्ठ पत्रकारों को यह स्वीकार करते सुना है कि आज भी प्रिंट मीडिया की विश्वसनीयता इलेक्ट्रॉनिक मीडिया से अधिक है।

लेकिन इसके साथ ही वे इस बात का भी जिक्र करते हैं कि उन पर किस तरह का दबाव रहता है और किस तरह उन्हें दर्शकों के सामने यह जताना पड़ता है कि अपनी जान जोखिम में डालकर पत्रकारिता से जुड़े रहना वे दर्शकों पर कोई बड़ा एहसान कर रहे हैं।

तो फिर रजत शर्मा जैसे लोगों के बारे में क्या कहेंगे, जिन्होंने प्रिंट मीडिया से अपनी शुरुआत की और आज एक समाचार चैनल के मालिक हैं?

कोई भी खुले तौर पर यह स्वीकार करने का साहस नहीं करता कि उसने शैतान के हाथों अपनी आत्मा बेच दी है।

अपवाद के तौर पर केवल करण थापर हैं, जो स्वयं को 'द डेविल्स एडवोकेट' कहते हैं। लेकिन पांच दशक से भी अधिक समय पहले भारत आने के बाद से वे आज भी एक बाहरी व्यक्ति की तरह ही बने हुए हैं। उन्हें बीबीसी ने प्रशिक्षित किया था।

फिर भी अच्छी खबर यह है कि वरिष्ठ पत्रकार भले ही आज की पत्रकारिता में व्याप्त भ्रम और समझौतों की बातें करते रहें, लेकिन भारत का जमीनी स्तर पर काम करने वाला सामान्य समाचार संवाददाता अपना काम जानता है।

इसका स्पष्ट प्रमाण जून-जुलाई और फिर अक्टूबर 2026 में जंतर-मंतर पर हुए हालिया विरोध प्रदर्शनों की इलेक्ट्रॉनिक और प्रिंट मीडिया द्वारा की गई कवरेज में देखने को मिला।

दिल्ली पुलिस के नए आयुक्त अनुराग कुमार, जिन्होंने 17 जुलाई 2026 को रातोंरात सतीश गोलछा का स्थान लिया था, को स्पष्ट निर्देश मिले हुए थे कि हर किसी को यह याद दिलाया जाए कि भारतीय संविधान में 'प्रेस की स्वतंत्रता' का कोई उल्लेख नहीं है। इसके पीछे चाहे जो भी कारण रहा हो।

वास्तव में दुनिया भर में केवल अमेरिका ऐसा देश है, जहाँ प्रेस की स्वतंत्रता का स्पष्ट उल्लेख किया गया है और लगभग 250 वर्ष पहले बनाए गए उसके संविधान में इसे संरक्षण दिया गया है।

अमेरिकी संविधान का पहला संशोधन कहता है:

'कांग्रेस ऐसा कोई कानून नहीं बनाएगी जो किसी धर्म की स्थापना करे अथवा उसके स्वतंत्र आचरण पर रोक लगाए; न ही अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता, प्रेस की स्वतंत्रता अथवा लोगों के शांतिपूर्वक एकत्र होने और अपनी शिकायतों के निवारण के लिए सरकार से गुहार लगाने के अधिकार को सीमित करेगा।'

यह एक अलग बात है कि अमेरिकी संविधान का दूसरा संशोधन प्रत्येक नागरिक को बंदूक रखने का अधिकार देता है। यह अधिकार उन परिस्थितियों में दिया गया था, जब अमेरिका स्वतंत्र हुआ था। लेकिन उसके बाद से स्कूलों और कॉलेज परिसरों में गोलीबारी की लगातार घटनाओं के बावजूद वहाँ बंदूक समर्थक लॉबी इतनी ताकतवर हो चुकी है कि सत्ता में चाहे कोई भी पार्टी हो, कोई भी उस पर नियंत्रण नहीं कर पाता।

लेकिन इस वर्ष की मीडिया कवरेज की बात करें तो हम सभी ने देखा कि पुलिस ने मीडियाकर्मियों के साथ कितनी बर्बरता की। उन पर लाठियाँ बरसाई गईं, पेलेट गन का इस्तेमाल किया गया और एक ऐसी घटना भी हुई, जो दिल्ली में पहले कभी नहीं देखी गई थी। वरिष्ठ स्तर के पुलिस अधिकारियों ने महिला पत्रकारों के साथ कैमरे के सामने बदसलूकी और छेड़छाड़ की।

प्रेस क्लब ऑफ इंडिया में अपनी आपबीती सुनाने वाले अनेक युवा पत्रकारों ने बताया कि पुलिस अधिकारी उनसे पीआईबी कार्ड दिखाने की माँग कर रहे थे, मानो पीआईबी से मान्यता प्राप्त पत्रकार भाजपा के सदस्य हों!

दूसरी ओर, दोनों ही मौकों पर सादे कपड़ों में मौजूद कुछ गुंडे पुलिस की मदद करते हुए प्रदर्शनकारियों की पिटाई कर रहे थे और उन्हें खदेड़ रहे थे।

सोशल मीडिया और इन्फ्लुएंसर्स के खिलाफ इतना कुछ लिखे जाने के बावजूद, इन दोनों ही अवसरों पर सोशल मीडिया से जुड़े पत्रकारों ने ही इन अत्याचारों को बेहद करीब से कैमरे में कैद किया।

उनमें से कई को घंटों तक पुलिस थानों में हिरासत में रखा गया। अंततः उन्हें छोड़ना पड़ा, क्योंकि अधिकारियों को समझ नहीं आ रहा था कि यदि उन्हें गिरफ्तार किया गया तो मजिस्ट्रेट के सामने वे क्या जवाब देंगे।

इसके विपरीत, यह बेहद शर्मनाक है कि भारत में मीडिया की इतनी विशाल मौजूदगी होने के बावजूद–आरएनआई के आँकड़ों के अनुसार देश में लगभग 2.3 लाख समाचार पत्र और पत्रिकाएँ हैं– दिल्ली पुलिस ने अपनी कार्रवाई के लिए माफी माँगने और संबंधित एसीपी को हटाने के बजाय महिला पत्रकारों के खिलाफ विभिन्न कानूनों के तहत एफआईआर दर्ज कर दी हैं।

और विरोध में किसी भी पत्रकार ने इस्तीफा नहीं दिया!

दावों की भाषा थोड़ी संयमित करें लेख का समापन अधिक प्रभावशाली बनाएं



लापता छोटी नीली पुस्तिका का मामला

अमिताभ श्रीवास्तव

प्रेस क्लब ऑफ इंडिया में युवा पत्रकारों और फोटोग्राफरों को अपनी पीड़ा और मानसिक आघात के अनुभव सुनाते हुए देखना बेहद दुखद था।

जैसा कि हम सभी जानते हैं, दिल्ली पुलिस ने जंतर-मंतर पर हाल के आंदोलनों की रिपोर्टिंग करने वाले पत्रकारों के खिलाफ पूरी ताकत से मोर्चा खोल दिया है। अब जंतर-मंतर को उनके लिए प्रतिबंधित क्षेत्र घोषित कर दिया गया है।

यह सब हृदयविदारक था, क्योंकि आम तौर पर पत्रकारों के पास किसी खबर को जुटाने के दौरान आने वाली बाधाओं के बारे में बताने का समय नहीं होता। रिपोर्टर या फोटोग्राफर बनने का फैसला करते समय वे इन कठिनाइयों को अपने पेशे का हिस्सा मानकर स्वीकार कर लेते हैं। लेकिन इस बार कार्रवाई जरूरत से ज्यादा कठोर रही है।

आज की खबर बताती है कि आंदोलन की कवरेज के दौरान एसीपी विवेक भगत द्वारा अपने साथ कथित तौर पर की गई छेड़छाड़ के दृश्य दिखाने वाली महिला पत्रकार रोजी के खिलाफ ही एससी/एसटी अधिनियम के तहत एफआईआर दर्ज कर दी गई है।

रोजी और कुछ अन्य महिला पत्रकारों ने एसीपी के खिलाफ एफआईआर दर्ज कराने की मांग को लेकर घंटों थाने में धरना दिया था, लेकिन मामला क्राइम ब्रांच को सौंप दिया गया। अब आज के अखबारों में खबर है कि उसी महिला पत्रकार के खिलाफ एफआईआर दर्ज कर ली गई है।

प्रेस क्लब ऑफ इंडिया में अपने अनुभव साझा करने के लिए जुटे युवा पत्रकारों की आपबीती में एक बात समान थी। उनसे अपनी पहचान साबित करने के लिए पीआईबी कार्ड दिखाने को कहा गया।

संबंधित अधिकारियों को यह बुनियादी तथ्य भी मालूम नहीं था कि पीआईबी कार्ड वरिष्ठ पत्रकारों (कम से कम पांच वर्ष के अनुभव वाले) और न्यूनतम 15 वर्ष का अनुभव रखने वाले स्वतंत्र पत्रकारों को दिया जाता है। तब तक अधिकांश पत्रकार अपराध संबंधी खबरों की रिपोर्टिंग छोड़कर मंत्रालयों आदि से जुड़ी खबरों की जिम्मेदारी संभालने लगते हैं।

मैं राजदीप सरदेसाई, सिद्धार्थ वरदराजन, श्रीनिवासन जैन, परंजॉय गुहा ठाकुरता, सुहासिनी हैदर जैसे वरिष्ठ पत्रकारों की बातें सुन रहा था। वे सभी इस बात पर अपनी-अपनी आशंकाएं और षड्यंत्र संबंधी धारणाएं व्यक्त कर रहे थे कि मोदी-शाह की जोड़ी युवा पत्रकारों और फोटोग्राफरों को अपना काम करने से रोककर मीडिया का दमन करना चाहती है।

राजदीप सरदेसाई ने विस्तार से बताया कि यह दिल्ली पुलिस की कार्यशैली नहीं है, बल्कि गुजरात और जम्मू-कश्मीर की पुलिस की कार्यशैली दिल्ली तक पहुंच गई है। वहां मौजूद लगभग हर पत्रकार ने इस बात से सहमति जताई।

इसके बाद पारंपरिक मीडिया और डिजिटल मीडिया की भूमिका का भी जिक्र हुआ, जिसने सभा में मौजूद लोगों के बीच एक और विभाजन रेखा खींच दी।

लेकिन जब मैं अपने मित्र और वरिष्ठ पत्रकार सुनील नेगी से बात कर रहा था, तो वहां की पूरी चर्चा मुझे 1976 के बाद के अपने अपराध रिपोर्टिंग के दिनों की याद दिला रही थी। उन दिनों दिल्ली

पुलिस हमेशा हमारा साथ देती थी।

जब हम घटनास्थल पर रिपोर्टिंग करने जाते थे, तो हमसे कोई पीआईबी कार्ड नहीं मांगता था।

दरअसल, मुझे अपना पीआईबी कार्ड हिंदुस्तान टाइम्स और सहारा टाइम छोड़ने के बाद मिला था। यानी पत्रकारिता में 35 वर्ष बिताने के बाद!

मैदान में रिपोर्टिंग करते समय हमारे लिए दिल्ली पुलिस की डायरी ही पर्याप्त होती थी। उसमें सभी पत्रकारों के नाम और फोन नंबर दर्ज रहते थे। यह एक छोटी-सी नीली पुस्तिका होती थी, जो हर साल प्रकाशित की जाती थी। दैनिक प्रेस कॉन्फ्रेंस में दिल्ली पुलिस हमें अपने मेहमानों की तरह आमंत्रित करती थी।

वेद मारवाह, अमोद कांत और किरण बेदी जैसे दिग्गज पुलिस अधिकारियों के साथ काम करने का अनुभव रखने के कारण मुझे हमेशा लगता था कि पुलिस हमारी रक्षक है, हमारे खिलाफ खड़ी कोई ताकत नहीं।

आखिर तब से अब तक ऐसा क्या बदल गया?

आर्थिक कारणों से दिल्ली पुलिस ने अपनी डायरी प्रकाशित करना बंद कर दिया है।

जब वह डायरी हमारी कमीज की जेब में रहती थी, तो हम सचमुच कह सकते थे कि "दिल्ली पुलिस हमारी जेब में है।"

इसका आशय कोई अपमानजनक टिप्पणी करना नहीं था। हमारा मतलब था कि पुलिस हमारी मित्र थी और हम उस पर भरोसा कर सकते थे।

राजधानी में पत्रकारों को पुलिस की गाड़ियों में भरकर ले जाना और उनकी पिटाई करना तब आम दृश्य नहीं था। चीजें भी बहुत बड़ा फर्क पैदा करती हैं!

कविता

कही पहुंचने के लिए कही से निकलना पड़ता है

सागर से मिलने नदी को निरंतर बहना पड़ता है

ठहरने के लिए नही बना है इंसा
कदम कदम बड़ाकर चलना पड़ता है

यू ही खड़ी नही होती जायदादे
वक्त पर पाई-पाई जोडना पड़ता है

शौहरत अचानक नही मिला करती
लगातार प्रयास करना पड़ता है

सफलता परोस कर नही देता कोई
मेहनत से मोल चुकाना पड़ता है

वृक्ष यू ही खड़ा नही हो जाता
छोटा सा बीज तो बोना ही पड़ता है

विरासत कायम रखने के लिए
वारिसो को काबिल बनना पड़ता है

संस्कार तो परिवार से ही मिला करते है
पीढ़ी दर पीढ़ी इन्हे नई पीढ़ी मे रोपना पड़ता है

तुषार माथुर

देश बदल रहा है, हम भी बदल रहे हैं!

जगदीश गौतम

कहते हैं कि जमाना बहुत तेजी से बदल रहा है। पहले लोग सुबह उठकर भगवान का नाम लेते थे, अब मोबाइल का पासवर्ड डालते हैं। पहले अखबार पढ़कर देश-दुनिया की खबर लेते थे, अब व्हाट्सऐप यूनिवर्सिटी से पीएचडी हासिल करते हैं। पहले घर में बुजुर्ग बच्चों को समझाते थे, अब बच्चे बुजुर्गों को बताते हैं कि असली खबर कौन-सी है और फर्जी कौन-सी—हालाँकि कई बार खुद उन्हें भी पता नहीं होता!

हमारे देश में हर आदमी व्यस्त है। नेता देश बनाने में, अधिकारी फाइल बनाने में, पत्रकार बहस बनाने में और जनता रील बनाने में व्यस्त है। देश की चिंता सबको है, बस देश के काम में किसी को ज्यादा समय नहीं मिलता।

आजकल आदमी की हैसियत उसके व्यवहार से नहीं, मोबाइल के मॉडल से तय होती है। किसी के पास महँगा फोन है तो वह सफल है, चाहे बैंक की ईएमआई के लिए पड़ोसी से उधार ही क्यों न माँगना पड़े। शादी में लोग दूल्हा-दुल्हन को कम और सेल्फी के एंगल को ज्यादा देखते हैं। खाना ठंडा हो जाए तो कोई परेशानी नहीं, फोटो गर्मागर्म आनी चाहिए!

सोशल मीडिया ने तो हर आदमी को महान बना दिया है। घर में पत्नी की बात मानने वाला पति फेसबुक पर दुनिया को अनुशासन सिखाता है। ऑफिस में बॉस के सामने चुप रहने वाला व्यक्ति सोशल मीडिया पर प्रधानमंत्री से लेकर राष्ट्रपति तक को सलाह दे देता है। डॉक्टर की सलाह पर शक करने वाला व्यक्ति इंटरनेट पर मिली पाँच लाइन पढ़कर पूरी बीमारी का इलाज बता देता है।

राजनीति में भी गजब का परिवर्तन आया है। पहले नेता जनता के घर आते थे, अब जनता टीवी खोलकर नेताओं के घर पहुँच जाती है। टीवी की बहस में एक ही समय में आठ लोग चिल्लाते हैं और एंकर सबको शांति बनाए रखने की सलाह देता है। दर्शक सोचता है कि अगर यही शांति है तो अशांति कैसी होगी!

महँगाई का भी अपना अलग गणित है। सब्जी वाला कहता है टमाटर महँगा है, पेट्रोल वाला कहता है कच्चा तेल महँगा है, दुकानदार कहता है माल महँगा है। ग्राहक कहता है मेरी तनख्वाह कब महँगी होगी? इस सवाल पर पूरा बाजार अचानक मौन व्रत धारण कर लेता है।

शादियों में तो अब प्रेम से ज्यादा प्रोटोकॉल है। मेहमान खाना खाने से पहले प्लेट नहीं, कैमरा ढूँढ़ता है। दूल्हा-दुल्हन सात फेरे लेते हैं और रिश्तेदार सात सौ फोटो। अगले दिन आधे मेहमानों को याद नहीं रहता कि खाना कैसा था, लेकिन किसने कौन-सी साड़ी पहनी थी, इसकी पूरी जानकारी उपलब्ध रहती है।

और फिटनेस का हाल मत पूछिए। सुबह पार्क में लोग वजन घटाने जाते हैं, लेकिन लौटते समय समोसे की दुकान पर रुकना नहीं भूलते। मोबाइल में दस हजार कदम पूरे होने की सूचना आ जाए तो शाम को मिठाई खाना उनका संवैधानिक अधिकार बन जाता है।

कुल मिलाकर हम आधुनिक हो गए हैं। रिश्ते ऑनलाइन, दोस्ती ऑनलाइन, ज्ञान ऑनलाइन, प्रेम ऑनलाइन और झगड़े भी ऑनलाइन। बस एक चीज ऑफलाइन रह गई है—अक्ल! वह अभी भी पुराने संस्करण में चल रही है और उसका अपडेट डाउनलोड करने के लिए कोई तैयार नहीं।

RNI NO.: UPHIN/2016/68336

हमारी वेबसाइट देखें
www.mediamap.co.in

जुड़िए एक ऐसे मंच से जो रखता है जनता की बात

भारत की अर्थव्यवस्था कहां जा रही है?





गंभीर विश्लेषण, तथ्यों के साथ

शिक्षा और समाज नई चुनौतियां





समावेशी विकास ही सही दिशा

लोकतंत्र, संविधान और नागरिक अधिकार





जन सरोकारों पर बेबाक चर्चा

मानवता और शांतिपूर्ण सहअस्तित्व





एक बेहतर, शांतिपूर्ण कल के लिए

हमारा YouTube चैनल देखें
Media Map Network

SUBSCRIBE

सोचें
देखें
समझें
साझा करें



जनसंवाद 7 : खानपान पर रोक क्यों? Ep-124

3 views • 4 hours ago



जन संवाद 6 : नेता हो या गुणाह, दोथी से क्यों डरना? Ep-123

4 views • 4 hours ago



विविध 15 : जन को भी छह महीने की सजा : Ep-122

27 views • 21 hours ago



विविध-14 : कंपनी की तानाशाही - आपके प्रोडक्ट को ट्रायल बना रहे हैं! Ep-121

6 views • 23 hours ago

आर्थिक सहयोग की अपील

उदार लोकतंत्र और गैर-सांप्रदायिक विचार के दर्शन से जुड़ा, मीडिया मैप समाचार नेटवर्क एक गैर-व्यावसायिक संगठन है। हम आप जैसे गंभीर और समझदार पाठकों के सहयोग से स्वतंत्र, निष्पक्ष और जनोन्मुख पत्रकारिता को आगे बढ़ाना चाहते हैं।

आपका सहयोग हमारे इस प्रयास को निरंतर और सशक्त बनाए रखने के लिए आवश्यक है।

स्वतंत्र पत्रकारिता | जन सरोकार | समावेशी समाज | रचनात्मक विचार | बेहतर कल के लिए

"स्वतंत्र मीडिया, सशक्त समाज"

आइए, सकारात्मक बदलाव की इस पहल से जुड़ें।

SBI
MEDIA MAP
SCAN & PAY

UPI ID: 9810385757@sbi

- State Bank of India
- Account No. 43812481024
- IFSC : SBIN0005226

आपका छोटा सहयोग बड़ा बदलाव ला सकता है

www.mediamap.co.in | Media Map Network

सत्य, संवाद और समाधान के साथ

Your Home in the

Himalayan Paradise

SCHOLARS DESTINATION

GUEST HOUSE

MUKTESHWAR | UTTARAKHAND

A Peaceful Retreat for

Scholars, Researchers, Thinkers & Travellers

- Breathtaking Himalayan Views
- Free Wi-Fi
- Comfortable Accommodation
- Quiet Spaces for Study & Work
- Home-cooked Delicious Food
- Easy Access & Safe Parking



Comfortable Bedrooms



Spacious Balcony

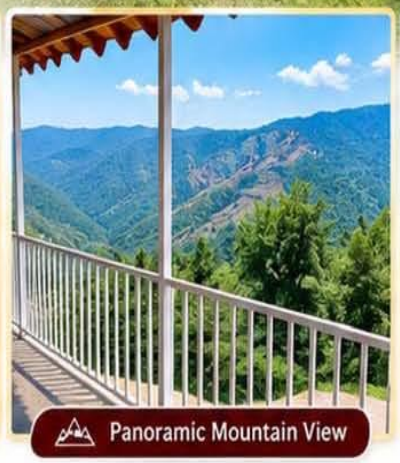

Panoramic Mountain View



Clean & Hygienic Bathrooms

BOOK YOUR STAY TODAY

9910322682

230 GEHNA, MUKTESHWAR
UTTARAKHAND - 263031

Peace | Nature | Inspiration

Come for the View... Stay for the Peace!